
दृश्य-दर्शन

दृश्य-दर्शन

लेखक

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी




सुलभ-ग्रन्थ प्रचारक मण्डल,

३६, शंकरघोष लेन, कलकत्ता।

प्रकाशक
सुलभ-ग्रन्थ प्रचारक मण्डल,
३६, शंकरघोष लेन,
कलकत्ता।

मूल्य १।)

प्रथम संस्करण

मुद्रक
महादेवप्रसाद सेठ,
बालकृष्ण प्रेस,
कलकत्ता।

नगरों की सैर जरूर ही करना चाहिए। अपने देश के कितने ही तीर्थ-स्थान और कितने ही ऐतिहासिक स्थल ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध अपने धर्म्म और अपनी पुरानी प्रभुता से बहुत घना है। उनके दर्शन करना और उनके सम्बन्ध की ऐतिहासिक बातें जानना हम लोगों के लिए अन्य अनेक दृष्टियों से तो लाभदायक है ही, पुण्य वर्धक भी है। जो लोग किसी कारण से अपने देश के भी प्रसिद्ध स्थानों की यात्रा करने में समर्थ नहीं उन्हें, यदि वे अपनी भाषा हिन्दी पढ़ सकते हैं तो, ऐसे स्थानों के वर्णन से पूर्ण पुस्तकें ही पढ़कर अपनी ज्ञानोन्नति करना अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

इसी उद्देश की सिद्धि के लिए अपने देश के कुछ प्रसिद्ध स्थानों, नगरों और राज्यों के सम्बन्ध में लिखे गये लेखों का यह संग्रह प्रकाशित किया जाता है। इन लेखोंमें से केवल एक लेख का सम्बन्ध अपने देश से नहीं। वह देश है बलगारिया। वह कृषि प्रधान है और कितने ही विषयों में अपने देश, भारत, से विशेष समता रखता है। तत्सम्बन्धी वर्णन से हम बहुत कुछ शिक्षा लाभ भी कर सकते हैं। इसी से उसपर लिखा गया लेख भी इस पुस्तक में सम्मिलित कर दिया गया है। तिबत और नेपाल ये दोनों देश बहुत कुछ भारत ही की सभ्यता और उसी के धर्म्म से अनुस्यूत हुए हैं। इसीसे उनके सम्बन्ध के भी लेख इसमें रख दिये गये हैं।

दौलतपुर (रायबरेली)
१० मई १९२८

महावीरप्रसाद द्विवेदी

देहली ।

देहली भरतखण्ड का रोम है। योरोप में रोम नगर जिस दृष्टि से देखा जाता है, भारत में देहली भी उसी दृष्टि से देखी जाती है। रोम नगर इटली की राजधानी है। प्राचीन समय में, रोम के राजराजेश्वरों ने चिरकाल तक प्रायः सारे योरोप में अपनी राजसत्ता चलाई है। इसी लिए रोम बड़े आदर का पात्र माना जाता है। देहली के हिन्दू और मुसलमान राज-राजेश्वरों ने भी अनेक काल-पर्य्यन्त अपनी राजसत्ता इस देश पर चलाई है; हजारों वर्ष तक यह नगर इस देश की राजधानी रहा है। यही कारण है जो इसकी समता रोम से की जाती है; यही कारण है जो कलकत्ता और बम्बई आदि प्रसिद्ध नगरों को छोड़ कर यही नगर बड़े बड़े दरबारों के लिए चुना जाता है। जब हम प्राचीन इतिहासों को देखते हैं और टेवर्नियर, बर्नियर और फ़िञ्च आदि की लिखी हुई पुस्तकें पढ़ते हैं तब मुग़ल

बादशाहों के समय की शोभा और समृद्धि का विचार करके बुद्धि चकित हो जाती है।

देहली का प्राचीन नाम हस्तिनापुर है। परन्तु इस हस्तिनापुर का पता ठीक ठीक नहीं लगता कि वह कहाँ पर था। प्राचीन हस्तिनापुर से कुछ दूर पर एक नगर इन्द्रप्रस्थ नाम का था। उसे पहले पहिल युधिष्ठिर ने अपनी राजधानी बनाया। ३० पीढ़ियों तक युधिष्ठिर के वंशज राजा लोग वहां राज करते रहे। उनके अनन्तर पांच सौ वर्ष तक एक दूसरे वंश ने वहां राज्य किया। फिर, वहां गौतम-वंश का राज्य हुआ। उस वंश के पन्द्रह राजा वहाँ हुए। गौतम के अनन्तर मयूरों ने वहां अपना अधिकार जमाया। मयूर-वंश का पिछला राजा पाल हुआ। इस पाल राजा को, आज से कोई दो हजार वर्ष पहले, उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने परास्त किया। उसी समय के लगभग दिलु अथवा दिलप नाम के राजा ने एक नया ही नगर बसाया; उस का नाम देहली पड़ा। कोई आठ सौ वर्ष तक देहली उजाड़ पड़ी रही। तदनन्तर तोमर घराने के लोग वहाँ रहने लगे। उनसे, कुछ दिनों में, चौहानों ने राज्य छीन लिया। चौहानों के प्रसिद्ध राजा विशालदेवने तोमर लोगों को वहांसे निकाल दिया। इस विशालदेव का नाम, फीरोजशाह की लाट पर जो शिलालेख है उस में, खुदा है। प्राचीन देहली पृथ्वीराज के उजाड़ किले के पास कहीं पर थी। लोहे का स्तम्भ जो अब वहां शेष है वह हिन्दुओं के उस प्राचीन नगर का एक मात्र चिन्ह है।

देहली के चारों ओर अनेक उजाड़ इमारतें पड़ी हुई हैं। उन

सब उजाड़ इमारतों का क्षेत्रफल ४५ वर्गमील के लगभग है। वहां-पर पृथक् पृथक् राजों ने सात नगर बसाये थे। देहली की उजाड़ इमारतें और उनके बचे हुए चिन्ह उन सात प्राचीन नगरों की साक्षी देते हैं। इन सातों में से एक नगर लालकोट था, जिसे राजा अनङ्गपाल ने, १०५२ ईसवी में, बसाया था। दूसरा नगर वह है जहां पृथ्वीराज का खंडहर किला इस समय दिखाई देता है। उसे पृथ्वीराज ने, ११८० ईसवी के लगभग, बसाया था। शेष पांच नगरों में एक सीरी के पास रहा होगा; उसे अलाउद्दीन ने १३०४ ई० में बसाया था। दूसरा १३२१ ईसवी में तुगलक शाह का बसाया हुआ तुगलकाबाद है। तीसरा १३२५ ईसवी में मुहम्मद तुगलक का बसाया हुआ आदिलाबाद है। दो और नगर भी इसी मुहम्मद तुगलक बादशाह ने बसाये थे। १६११ ईसवी में फिन्च साहब आगरे से देहली गये थे। वे लिखते हैं कि उन्होंने उस समय प्राचीन देहली के अवशेष भाग को देखा था। उन छिन्न भिन्न हुए मकानों और किलों को "सात किला और बावन फाटक" के नाम से लोगों को कहते हुए उन्होंने सुना था। कई विद्वान्, जिन्होंने इस बात की खोज की है, अनुमान करते हैं कि युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ कहीं उस जगह रहा होगा जिसे पुराना क़िला कहते हैं। ११९१ ईसवी में मुसलमानों ने हिन्दुओं को निकाल कर जब देहली अपने अधिकार में कर ली तब उन्होंने प्राचीन नगर को बिलकुल ही छिन्न भिन्न कर दिया। इसीलिए अब उसके बहुत ही कम चिन्ह पाये जाते हैं।

मुसलमानों का राज्य होने पर पहली इमारत कुतबुद्दीन ऐबक ने १२०६ ईसवी में बनाई। वह कुतुबमीनार के नाम से प्रसिद्ध है। उसके अनन्तर अलाउद्दीन ने भी कसरे-हज़ार-सितून अर्थात् हज़ार खम्भों का एक महल बनाया, जिसके चिन्ह शाहपुर के उजड़े हुए क़िले में अब तक पाये जाते हैं। उसके अनन्तर गयासुद्दीन तुग़लक ने तुग़लकाबाद में एक क़िला बनवाया। उसके लड़के महम्मद ने आदिलाबाद नामक एक उत्तम गढ़ निर्माण कराया। फीरोज़ तुग़लक ने १३५१ से १३८८ ईसवी के बीच अनेक इमारतें बनवाईं। एक नहर उसने यमुना से निकलवाई और उसे अपनी नई राजधानी फीरोज़ाबाद तक वह ले गया। यह नहर अब तक वर्त्तमान है। इसी फ़ीरोज़ तुग़लक ने फ़ीरोज़ाबाद को बसाया और कुश्के-फीरोज़ाबाद और कुश्के-शिकार नाम के दो महल भी उसने बनवाये। १५३३ ईसवी में हुमायूं ने इन्द्रप्रस्थ अर्थात् पुराने क़िले की मरम्मत कराई और उस का नाम दीनपनाह रक्खा। १५४० इसवी में शेरशाह ने उसी का नाम शेरगढ़ रक्खा। इसी शेरशाह ने क़िला कोहना मसजिद नाम की एक मसजिद और शेरमहल नाम का एक महल बनवाया। १५४६ ईसवी में शेरशाह के लड़के सलीम शाह ने सलीमगढ़ का क़िला बनवाया।

जिस देहली को हम आज देख रहे हैं और जिसे शाहजहानाबाद भी कहते हैं वह, १६३८ ईसवी के लगभग, शाहजहां की बसाई हुई है। वहां का प्रसिद्ध क़िला और प्रसिद्ध बादशाही महल जो उसी क़िले के भीतर हैं, १६३८ और १६४८

ईसवी के बीच बने हैं। जो दीवार शहर के चारों ओर है वह और जुमा मसजिद भी उसके थोड़े ही दिन पीछे निर्माण हुई है। औरङ्गज़ेब के द्वारा क़ैद किये जाने के पहले केवल छः वर्ष तक शाहजहाँ ने अपने बनवाये हुए महल में वास किया। उसके अनन्तर औरंगज़ेब कोई २० वर्ष तक वहाँ रहा। फिर १६८० ईसवी में दक्षिण की ओर वह विजययात्रा के लिए निकला। शाहजहां के अनन्तर फिर कोई अच्छी इमारत देहली में नहीं बनी।

१७३९ ईसवी में फ़ारस के बादशाह नादिरशाह ने देहली पर चढ़ाई की और १२ मार्च को प्रातःकाल से दो पहर तक नगर के प्रत्येक गलीकूचे में उसने रुधिर की नदियां बहाईं। नादिरशाह की सेना ने देहली के असंख्य निवासियों का संहार किया। यह मनुष्य-हत्या देहली के बादशाह महम्मदशाह के विनय करने पर बन्द हुई; परन्तु, तब तक, नगर का बहुत कुछ भाग उजाड़ हो चुका था। देहली की शोभा की क्षीणता उसी समय से आरम्भ हुई। नादिरशाह वहांसे असंख्य धन के साथ बादशाह का मयूर-सिंहासन और कोहेनूर हीरा भी ले गया।

१७९० ईसवी में महादाजी सेंधिया ने देहली को विजय किया और १८०३ ईसवी के सितम्बर तक उसे उसने अपने अधीन रक्खा। १८०३ ईसवी में जनरल लेक ने सेंधिया की सेना को परास्त करके शाह आलम और उसके कुटुम्ब को अपने अधीन कर लिया। १८०४ ईसवी के आक्टोबर महीने में यशवन्तराव होल्कर ने बहुत दिनों तक

देहली को घेर रक्खा ; परन्तु अँगरेज़ी सेना को वह वहांसे न निकाल सका। उस समय से लेकर १८५७ इसवी तक इस देश की प्राचीन राजधानी देहली अँगरेज़ों ही के अधीन रही। औरङ्गज़ेब के वंशज उस समय तक नाममात्र के लिए बादशाह थे। १८५७ ईसवी में, जिस समय सिपाहियों ने विद्रोह मचाया, देहली में बहादुरशाह नाममात्रको बादशाही चला रहे थे। उस समय उनकी अवस्था ८० वर्ष के लगभग थी। विद्रोहियों का साथ देने के कारण अँगरेज़ों ने उन्हें रंगून भेज दिया। तब से देहली का राज्यासन सदा के लिए सूना हो गया। विद्रोह के अनन्तर देहली पञ्जाब में मिला दी गई और वह एक साधारण नगर रह गई। उस का राजकीय ठाठ लोप हो गया। यह लिखने का स्थान इस छोटे से लेख में नहीं है कि विद्रोह के समय देहली में कौन कौन घटनाये' हुई' और किस किस कारण से उसे क्या क्या हानियां उठानी पड़ीं।

देहली में अनेक स्थान देखने योग्य हैं। उन में से ये मुख्य हैं—

१ क़िला	५ समन बुर्ज और रङ्गमहल
२ नक़ारख़ाना	६ मोती-मसजिद
३ दीवाने-आम	७ जुमामसजिद
४ दीवाने-ख़ास	८ चान्दनीचौक

देहली का क़िला लाल पत्थर का है। वह यमुना के किनारे है। कहीं कहीं उस में सङ्गमरमर भी लगा हुआ है। क़िले में जाने के लिए कई फाटक हैं ; उन में से लाहौरी दरवाज़ा, जो चाँदनीचौक के सामने है, बहुत प्रसिद्ध है। लाहौरी दरवाज़े और क़िले के बीच में

अनेक अच्छी अच्छी इमारतें थीं। उन इमारतों में, बादशाही समय में, बाज़ार लगते थे और शाही कर्म्मचारी रहा करते थे। विद्रोह के समय वे सब गिरा दी गईं; परन्तु अभी जो कुछ शेष है उससे उनके वैभव का बहुत कुछ अनुमाम किया जा सकता है। लाहौरी दरवाज़े से निकलकर, पूर्व्व की ओर थोड़ी दूर जाने पर, नक्कार-ख़ाना मिलता है। बड़े बड़े अमीर और अधिकारी, बादशाही समय में, वहां तक अपने अपने हाथियों पर चढ़े हुए चले आते थे। वहां पर वे उतर पड़ते थे और शाही दरबार को पैदल जाते थे।

क़िले के भीतर प्रवेश करने पर दीवाने-आम, दीवाने-ख़ास और मोती-मसजिद पर दृष्टि पड़ती है। दीवाने-आम बादशाही दरबार का स्थान है। वहां प्रायः सब को प्रवेश मिलता था। वह तीन ओर से खुला है। पीछे दीवार में एक ज़ीना है जो सिंहासन के स्थान तक चला गया है। वह स्थान पृथ्वी से १० फुट ऊंचा है। उसपर संगमरमर के चार खम्भों पर एक छत्र है। उस का काम बहुत ही अच्छा है। सिंहासन के पीछे एक दरवाज़ा है, जिस से बादशाह दरबार में आते थे। पीछे की दीवार बहुमूल्य पत्थरों से पच्ची की हुई है। वहां नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर फल, फूल और पशु-पक्षियों के चित्र चित्रित हैं। वह काम आस्टिन डी बोरडक्स नामक फरा-सीसी कारीगर ने, शाहजहां के समय में, किया था।

दिवाने-आम से कोई १०० गज़ पूर्व की ओर, आगे, दीवाने-ख़ास है। वह बादशाह के बैठने की जगह थी। वहां मुख्य मुख्य अमीर-उमरा और अधिकारियों के सिवा और कोई नहीं जाने पाता था।

वहीं राज्य के कार्यों की गूढ़ बातें अपने मन्त्रियों के साथ बैठकर बादशाह करते थे। वह संगमरमर का बना हुआ है। उस में सुनहरा काम है। उसकी छत चांदी के पत्रों से मढ़ी हुई थी, जिसे १७६० ईसवी में मराठे निकाल ले गये। मध्य में, पूर्व की ओर, सङ्गमरमर का एक चबूतरा है, जिसपर प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन (तख्ते-ताऊस) रक्खा रहता था। उसे १७३९ ईसवी में नादिरशाह फारस को उठा ले गया। वहां वह अब तक, तेहरान में, विद्यमान है।

समनबुर्ज और रंगमहल, दीवाने-ख़ास के दक्षिण ओर हैं। वह बादशाह का अन्तःपुर था। उसमें जो काम किया हुआ है उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसे देख सुन्दरता और शोभा स्वयं लज्जित होती है। पहले इन इमारतों के चारों ओर वाटिका थी और स्थान स्थान पर फौवारे लगे थे। उस समय इनकी जो शोभा और समृद्धि थी उसका शतांश भी नहीं रह गया है। तथापि जो कुछ बचा है उसको देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि उस समय इनकी समता करने योग्य दूसरी इमारत शायद कहीं भी न रही होगी। अब यहां अँगरेजी सेना का निवास है।

मोती मसजिद भी वहीं पास है। उसे १६३५ में औरंगजेब ने बनवाया था और उस के बनाने में १,६०,००० रुपये खर्च हुए थे। वह भी सङ्गमरमर की है। उसकी भी शोभा और सुन्दरता देखने ही योग्य है।

जुमा-मसजिद को यदि संसार भर की मसजिदों से अच्छी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। वह २०१ फुट लम्बी और १२० फुट चौड़ी

है। वह ६५८ ईसवी में बनी थी। ५००० कारीगर ६ वर्ष तक उस के बनाने में लगे रहे थे। उसके मीनार बहुत ऊंचे और बहुत ही मनोहर हैं। उनमें से दो की उंचाई कोई १३० फुट है। वहां हाथ के लिखे हुए कुरान की कई पुस्तकें देखने योग्य हैं। अली के हाथ का लिखा हुआ एक कुरान, सातवीं शताब्दी का वहां है; एक इमाम-हुसेन के हाथ का भी है। कफ़शेमुबारक (महम्मद की जूती), कदू-मुल-मुबारक (महम्मद के पैरों का चिन्ह) और मूये-मुबारक (महम्मद का केश) भी वहां देखने की वस्तु है।

चाँदनी-चौक देहली का मुख्य बाज़ार है। उसके दोनों ओर वृक्ष लगे हुए हैं। वहां देहली के प्रसिद्ध प्रसिद्ध दूकानदार बैठते हैं। चौक के बीच में नार्थब्रुक नाम का फौवारा है। १७२१ ईसवी में रोशनुद्दौला जफ़र खां की बनवाई हुई सुनहली मसजिद इसी फौवारे के पास है। यह मसजिद छोटी, परन्तु सुन्दर, है। इसी मसजिद में बैठकर नादिरशाह ने देहली की नरहत्या का कौतुक देखा था।

काली मसजिद, घण्टाघर, जैनमन्दिर, रानीबाग़ इत्यादि और भी कितने ही स्थान देहली में देखने योग्य हैं।

देहली में ऐसे अनेक स्थल हैं जो १८५७ के विद्रोह का स्मरण दिलाते हैं। उनमें से शस्त्रागार, सेन्ट जेम्स का गिरजाघर, काश्मीरी दरवाज़ा, कुदसियां बाग़, लडलो कैसल, हिन्दूराव का मकान मुख्य हैं।

देहली के आस पास भी अनेक दर्शनीय स्थान हैं। अशोक का एक बहुत प्राचीन स्तम्भ है। वह पहले मेरठ में था। ईसा के ३०० वर्ष पहले वह बना था। १३५६ ईसवी में उसे फीरोजशाह बादशाह

देहली में लाया। फीरोजाबाद में भी अशोक का एक स्तम्भ है। इन स्तम्भों पर १३१२, १३५६ और १५२४ ईसवी के कई छोटे छोटे लेख हैं। फीरोज़ाबाद के स्तम्भ (लाट) पर, पाली भाषा में, अशोक के समय का भी एक लेख है। इस लाटकी उंचाई ४२ फुट है। इस का व्यास १० फुट १० इंच है।

कुतुबमीनार देहली के अजमेरी दरवाज़े से ११ मील है। वह उसी स्थान पर है जहां शायद प्राचीन देहली थी। उसीके पास पृथ्वी-राज के किले के भी चिन्ह हैं। वह २४० फुट ६ इञ्च ऊंचा है। उसके नीचे का व्यास ४७ फुट है। वह पांच खण्डों में बना हुआ है। देहली में यह मीनार एक अनोखी ऐतिहासिक वस्तु है। उसीके पास कुतुबुल-इसलाम नाम की प्राचीन मसजिद है। उसे ११६१ ईसवी में कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनवाया था। इसके एक दरवाज़े पर, अरबी में, एक लेख खुदा हुआ है, जिस में लिखा है कि २७ मन्दिरों को तोड़ कर उन्हींके ईंट-पत्थर इत्यादि से यह मसजिद बनवाई गई है।

इसी मसजिद के पास लोहे का एक प्राचीन स्तम्भ है। वह बिल-कुल ठोस लोहे का है। उसका व्यास १६ इञ्च और उंचाई २३ फुट ८ इञ्च है। उसपर एक लेख, संस्कृत में, खुदा हुआ है। उसमें लिखा है कि यह राजा धव का यशोवाहु है। इस राजा ने सिन्धु-नदी के पास रहने वाली वाल्हीक जाति पर बड़ी विजय पाई थी। उसीके स्मरण में उसने यह स्तम्भ खड़ा किया था। वह ईसा की चौथी शताब्दी का बना हुआ जान पड़ता है। परन्तु किसी किसी का मत है कि राजा अनङ्गपाल ने इस स्तम्भ को बनवाया था। अनङ्गपाल

का नाम इसी स्तम्भ में एक जगह खुदा भी है। अनङ्गपाल वाले लेख की तारीख़ संवत् ११०९ अर्थात् १०५२ ईसवी है।

इन स्थलों और इन वस्तुओं के सिवा और भी अनेक स्थल, देहली के इर्द गिर्द, देखने योग्य हैं। इन्द्रप्रस्थ अर्थात् पुराना क़िला, निज़ामुद्दीन अवलिया की क़ब्र, हुमायूं की क़ब्र, सफ़दरजङ्ग की क़ब्र, अलतमश की क़ब्र, हौज़ख़ास, जयसिंह का मानमन्दिर, तुग़लकाबाद और मेटकाफ़ हाउस इत्यादि देहली के प्राचीन वैभव का अभी तक साक्ष्य दे रहे हैं।



जयपुर ।

जयपुर बड़ा सुन्दर शहर है। ऐसा सुन्दर और क़ायदे से बसा हुआ और कोई शहर हिन्दुस्तान में नहीं। उसका संक्षिप्त हाल लिखने के पहले जयपुर राज्य के विषय में दो चार बातें लिख देना अच्छा होगा।

जयपुर कछवाहों का राज्य है। कछवाहे अपनेको रामचन्द्र के पुत्र कुश का वंशज बतलाते हैं। कछवाहों में धोलाराय नाम के एक प्रतापी राजा हुए। उन्हींने जयपुर-प्रान्त को मीनों और बिन-गूजरों से छीन कर, ९६७ ईसवी में, इस राज्य की नीव डाली। इसे ढूंढार भी कहते हैं। इसकी पहली राजधानी अम्बर में थी। जयपुर से अम्बर सिर्फ ५ मील है। वह इस समय उजाड़ है। तथापि कई सौ वर्ष तक जयपुर की राजधानी रहने के कारण वहां अब भी कई इमारतें देखने लायक हैं। अम्बर के क़िले में यद्यपि अब कोई नहीं रहता तथापि उसकी इमारतें उसके पूर्व वैभव की अब तक गवाही दे रही हैं। वहां-का महल देखने लायक है। जयमन्दिर नामक इमारत में आगरे के ताजमहल की तरह सङ्गमरमर का काम है। उसकी छत में आईने

जड़े हुए हैं। जसमन्दिर और सुहागमन्दिर भी अवलोकनीय हैं। देहली के "दीवाने आम" के नमूने का एक सभागृह भी वहां है। उसके बीच में सब खम्भे सफेद पत्थर—सङ्गमरमर—के हैं। बाहर के खम्भे लाल पत्थर के थे। उनपर अच्छी नक्काशी थी। परन्तु, सुनते हैं, देहली के मुग़ल सम्राट् जहांगीर ने इसपर एतराज़ किया। उसने कहा हमारे "दीवाने-आम" के मुकाबले की इमारत न बननी चाहिये। उसकी बराबरी का सभागृह अम्बर में बनना हमें पसन्द नहीं। इससे इन लाल पत्थर के खम्भों पर चूने का "प्लास्टर" करा दिया गया। अम्बर में बहुत से दर्शनीय देवमन्दिर थे। पर अब वे प्रायः उजाड़ और भग्न अवस्था में पड़े हैं।

अम्बर-नरेश सवाई जयसिंह ने, १७२८ ईसवी में जयपुर बसाया। राज्य की अधिकाधिक उन्नति होती जाने के कारण अम्बर में तकलीफ़ होने लगी। वहां राजधानी रखने में सुभीता न देख पड़ा। इससे महाराजा सवाई जयसिंह जयपुर बसाकर वहाँ आ रहे। जयपुर की दक्षिण दिशा को छोड़कर और सब तरफ़ पहाड़ियां हैं। पहाड़ियों पर क़िले हैं। शहर के चारों ओर शहर-पनाह है; उसमें सात फाटक हैं। जयपुर की प्रधान सड़कें १११ फुट चौड़ी हैं। उनके दोनों तरफ़ प्रायः एक ही तरह के मकान हैं। सड़कें खूब लम्बी हैं। चौराहे पर खड़े होने से चारों तरफ दूर-दूर तक का बड़ा ही मनोहर दृश्य देख पड़ता है। कबूतर वहां बहुत अधिक हैं। उनके झुण्ड के झुण्ड सड़कों पर घूमा करते हैं।

महाराजा जयसिंह जैसे प्रतापी और राजनीति कुशल थे वैसे ही

विद्या और विज्ञान में भी कुशल थे। उनका मानमन्दिर इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे अद्वितीय ज्योतिषी थे। जयपुर के सिवा देहली, बनारस, मथुरा और उज्जैन में भी उन्होंने मानमन्दिर बनवाये थे। ये मानमन्दिर अनेक प्रकार के ज्योतिष-सम्बन्धी यन्त्रों से सुसज्जित थे। इन्हें वेधशाला या यन्त्रशाला कहना चाहिए। इनमें रक्खे हुए यन्त्र खुद महाराज जयसिंह की कल्पना के फल थे। उनसे खगोल-विषयक कितनी ही बातें मालूम होती हैं। ये मानमन्दिर अन्यत्र तो बिगड़ गये हैं, पर जयपुर का मन्दिर अच्छी दशा में है। कुछ दिन हुए उसका जीर्णोद्धार किया गया है। यन्त्रशाला के पास ही महाराजा के महलों में जानेका प्रवेशद्वार है। उसका नाम है त्रिपोलिया। फाटक के ठीक ऊपर अंगरेजी और देवनागरी में "त्रिपोलिया" लिखा है। गाड़ियों, घोड़ों और आदमियों की यहां हमेशा भीड़ रहती है। इस प्रवेश द्वार के ऊपर और दाहने बायें पत्थर के बारीक काम, जालियों वगैरह, को देखने ही से दर्शक को यह भासित हो जाता है कि भीतर महलों में जो शिल्प-चातुर्य्य दिखाया गया होगा वह बहुत ही अद्भुत होगा। महाराजा जयपुर के महल का नाम है चन्द्रमहल। उसके आस पास बड़े ही सुन्दर बाग हैं। जगह जगह फ़ौवारे लगे हुए हैं। फूलों से लदे हुए पेड़ों, पौधों और बेलों को देखकर नेत्रों को अलौकिक आनन्द होता है। चन्द्रमहल के इर्द गिर्द और भी कितनी ही इमारतें हैं। उनमें से बहुतेरी पीछे से बनाई गई हैं। चन्द्रमहल सब के बीच में है। वह महाराजा जयसिंह का बनवाया हुआ है और सात खण्ड का है। दूरसे देखनेसे यह राज-प्रासाद बहुत ही भव्य मालूम होता

है। इसकी भीतरी भव्यता और शिल्प-सुन्दरता का अन्दाज़ा उन्हींको हो सकता है जिन्होंने उसे देखा है। इसके नीचे के खण्ड में महाराजा का दीवाने-ख़ास है। वह बिलकुल संगमरमर का है। सादा होकर भी वह शिल्प-कौशल का उत्कृष्ट नमूना है। राजप्रासाद के सामने गोबिन्द जीका प्रसिद्ध मन्दिर है। महाराजा साहब यहां दर्शनार्थ आया करते हैं। जयपुर का बादल-महल रामकटोरा झील के किनारे है। इस झील में बेशुमार मगर हैं। वे पले हुए हैं। बुलाने से बाहर आ जाते हैं और खाने को जो कुछ दिया जाता है खाते हैं। इनमें से कितने ही जल-चर किनारे पर बाहर पड़े पड़े धूप लिया करते हैं। कोई कोई मगर बहुत बड़े और बहुत पुराने हैं। यन्त्रशाला से मिली हुई महाराजा की अश्वशाला है। उससे कुछ दूरी पर महाराजा जयसिंह का हवामहल है। यह कई खण्डों की इमारत है और देखने लायक है। सुनते हैं, मुग़ल सम्राट की फ़रमाइश से महाराज ने यह महल बनवाया था। शहर-पनाह के बाहर जयपुर का रमणीय उद्यान है। यह बहुत बड़ा बाग है। इसका रक़बा कोई ७० एकड़ होगा। डाक्टर डि-शाबेक की निगरानी में यह बना था और ४ लाख रुपये खर्च हुए थे। इस बाग़ का सालाना खर्च कोई ३० हज़ार रुपये है। इसके बीच में "अलबर्ट हाल" है। १८७६ ईसवी में प्रिन्स आव् वेल्स (वर्तमान राजेश्वर सप्तम एडवर्ड) ने इसकी नीव डाली थी। इसीमें अजायब घर है। उसमें जो चीज़ें हैं एक से एक बढ़कर हैं। किसी की राय है कि हिन्दुस्तान में यह अजायब घर विलायत के "सौथ केन्सिंगटन" के दरजे का है। इस बाग में सैकड़ों प्रकार के पशु-पक्षी और जीव जन्तु

पले हुए हैं। जिसे जयपुर जाने का मौका मिले उसे बाग़ और अजायब घर ज़रूर देखना चाहिए।

जयपुर में विद्या और कलाकौशल की रक्षा का भी उत्तम प्रबन्ध है। वहां एक "स्कूल आव् आर्ट्स" है। उसमें अनेक प्रकार के शिल्पकार्य्य सिखलाये जाते हैं। वहां कपड़े बुनना, "यनेमल" के काम करना आदि कितने ही प्रकार के उपयोगी उद्योग-धन्धे सिखाने का प्रबन्ध है। हवामहल के सामने महाराजा का कालेज है। वह १८४४ ईसवी में बना था। उसमें एम० ए० तक की पढ़ाई होती है। संस्कृत-शिक्षा का भी वहां प्रबन्ध है। जयपुर में स्त्री शिक्षा का भी प्रचार है। लड़कियों के लिए एक अच्छा स्कूल है। जयपुर के वर्त्तमान नरेश महाराजा सर सवाई माधवसिंहजी जी० सी० एस० आई० हैं। १८८२ ईसवी में आपको राजासन प्राप्त हुआ था। विद्या, विज्ञान और कलाकौशल की उन्नति की तरफ़ आपका हमेशा ध्यान रहता है। आप अपनी प्रजा के सुख के लिए नये नये सुधार करने में हमेशा यत्नवान रहते हैं। आपका राज्य-विस्तार थोड़ा नहीं। योरप के बेलजियम देश से भी कुछ बड़ा है। आप ४ हजार सवार, १६ हजार पैदल फौज और २८१ तोपें रखते हैं। राजेश्वर सप्तम एडवर्ड के तिलकोत्सव के समय आप हिन्दू-ठाठ से विलायत पधारे थे। आपने इस देश के दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिए अकालफण्ड में कई लाख रुपये दिये हैं। (फरवरी १९०८)

ग्वालियर।

ग्वालियर बहुत पुराना शहर है। बहुत कम शहर उससे अधिक पुराने होने का दावा इस देश में रखते हैं। वह आगरा से ६५ मील और इलाहाबाद से ८७७ मील है। वहां रेल का स्टेशन है। आगरे से भी ग्वालियर जाने का रास्ता है और झांसी से भी। ग्वालियर २६°१३′ उत्तरी अक्षांश और ७८°१२′ पूर्वी देशांश में है। स्वदेशी रियासतों में ग्वालियर का दूसरा नम्बर है; पहला नम्बर निज़ाम का है। ग्रेट ब्रिटन के स्काटलैण्ड और वेल्स, इन दोनों देशों का मिलकर जितना विस्तार है, ग्वालियर राज्य का विस्तार उससे भी अधिक है। योरप में डेनमार्क और हालैण्ड के सदृश जो छोटे छोटे, परन्तु स्वतन्त्र देश हैं, ग्वालियर की रियासत उनसे बड़ी है। इस राज्य का क्षेत्रफल २९,००० वर्गमील है। आबादी कोई ३२,३०,००० है, और मालगुजारी १,२५,००,०० रुपये हैं।

ग्वालियर में सिन्धे-शाखा के मराठों के बंशज बहुत दिनों से राज्य कर रहे हैं। विदेशी होने के कारण अंगरेज़ी राज्य के अधिकारी यहाँ के नामों की बड़ी दुर्दशा करते हैं। जिन्होंने लखनऊ का लकनौ; देहली का डेलही; कानपुर का क़ानपोर कर डाला उन्हीं ने सिन्धे का सेन्धिया भी कर दिया। पूना के पेशवा बालाजी के खिदमतगार रानोजी वर्तमान वंश के नरेशों में पहले नरेश हुए। रानोजी के पुत्र महादजी सेन्धिया ने बड़ा नाम पैदा किया। वीरता में वे अद्वितीय थे। उन्होंने ग्वालियर-राज्य के विस्तार को बहुत बढ़ाया और अनेक लड़ाइयों में विजय पाया। ग्वालियर के वर्तमान नरेश महाराजा माधवराव सेन्धिया हैं। आप विलायत हो आये हैं; पाश्चात्य सभ्यता में खूब दीक्षित हैं; अंगरेज़ी भाषा के पारगामी हैं; और इस इस समय की राजनीति में विशेष कुशल हैं। आपके पिता का नाम महाराजा जयाजी राव सेन्धिया था। उनका आकार बहुत भव्य था। पढ़ने लिखने में उनकी रुचि कम थी; पर फ़ौजी कामों में उनका दिल खूब लगता था। इनके मरने पर ख़ज़ाने में साढ़े ५ करोड़ रुपया नक़द निकला था।

किसी किसी का मत है कि ईसा के ३१० वर्ष पहले ग्वालियर की नीव पड़ी थी। परन्तु विलफर्ड साहब और जनरल कनिङ्हाम को पता लगा है कि २७५ ईसवी में उसका निर्माण हुआ था। जिस समय गुप्तवंशी राजों का प्रभुत्व था उस समय उनका एक करद राजा तोरामन (सूर्यमणि ?) नामक था। वह वर्तमान गुप्त-नरेश से बाग़ी हो गया और यमुना-नर्म्मदा के बीच के देश में उसने अलग ही अपनी

प्रभुता फैलाई। तोरामन सूर्यवंशी कछवाहा था। उसका पुत्र सूर्यसेन हुआ। २७५ ईसवी में उसीने ग्वालियर बसाया। सूर्यसेन कुष्ठ रोग से पीड़ित था। ग्वालियर के पास एक पर्वत था। उसका नाम था गोपाचल अथवा गोपगिरि। उस पर ग्वालप नाम के एक महात्मा रहते थे। सूर्यसेन शिकार खेलता हुआ गोपाचल पर आया और महात्मा ग्वालप के दर्शन किये। उस महात्मा ने अपने कमण्डलु से एक चुल्लू भर जल सूर्यसेन को पीने के लिए दिया। उसको पीने से सूर्यसेन का कुष्ठ जाता रहा। अतएव उसने वहां पर एक क़िला बनवाया और उसका नाम ग्वालियावर रक्खा। तब से वह वहीं रहने लगा। यही ग्वालियावर या गोपगिरि धीरे-धीरे ग्वालियर हो गया। पुरानी बातों के ज्ञानी ऐसा ही कहते हैं; झूठ सच की राम जानें। महात्मा ग्वालप ने इस राजा का नाम बदल कर शोभनपाल रक्खा और कहा कि जब तक इस वंश के राजा पाल कहलावेंगे तब तक उनका राज्य बना रहेगा। इस वंश के सब मिला कर ८३ राजे हुए। पर चौरासिवें राजा का नाम तेजकर हुआ; तेजपाल न हुआ। इससे यह वंश राज्य-भ्रष्ट हो गया?

ग्वालियर का राज्य कछवाहा राजों के हाथ से निकल जाने पर परिहारों का उसपर अधिकार हुआ। इस वंश के ७ राजे हुए। १०३ वर्ष तक इस वंश ने राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा सारङ्गदेव के समय में अल्तमश ने ग्वालियर पर चढ़ाई की और १२३२ ईसवी में उसने परिहारों को वहां से निकाल दिया। इस विजय की वार्ता को अलतमश ने क़िले के एक फाटक पर खुदवा दिया। बाबर

ने अपनी दिनचर्या में लिखा है कि विजयवार्ता वाले लेख को उसने खुद देखा और पढ़ा था ; परन्तु इस समय उसका कहीं पता नहीं। जब से यह क़िला देहली के बादशाहों के क़ब्ज़े में आया तब से उन्होंने उसके भीतर शाही क़ैदखाना बनाया। १३७५ ईसवी में राजा वीरसिंह देवने इसे मुसल्मानों से छीन लिया।

ग्वालियर के ऊपर अनेक विपदें आई और अनेक मुसल्मान-स्वामियों के स्वामित्व में उसे रहना पड़ा। वहांके नरेशों ने कभी देहली के बादशाहों को कर दिया ; कभी मालवा के होशङ्गशाह को ; और कभी जौनपुर के हुसेन शर्की को। १५०५ ईसवी में सिकन्दर लोधी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की ; परन्तु वहां के तत्कालीन राजा मानसिंह ने उसे मार भगाया। १५१७ में उसने आगरे आ कर ग्वालियर विजय की बड़ी भारी तैयारी की ; परन्तु चढ़ाई करने के पहले ही वह मर गया। ग्वालियर-विजय में इब्राहीम लोधी को कामयाबी हुई। उसने ३०, ००० सवार ३०० हाथी और बहुत सी पैदल फ़ौज भेज कर ग्वालियर को घेर लिया। घेरे ही के समय मानसिंह की मृत्यु हुई। मानसिंह के पुत्र विक्रमादित्य ने भी एक वर्ष तक मुसल्मानों को दाल नहीं गलने दी। घेरा बराबर जारी रहा। अन्त को उसने अधीनता स्वीकार कर ली और वह आगरे को भेज दिया गया।

तोमरवंश के ग्वालियर-नरेशों में मानसिंह बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बहुत अच्छी अच्छी इमारतें बनवाईं। ग्वालियर के उत्तर-पश्चिम जो मोती-झील है वह उसीकी खुदाई हुई है। कला-कौशल की उसने बड़ी उन्नति की। उसने पत्थर का एक हाथी बनवाया था ;

उस पर पत्थर ही के दो आदमी हौदे में सवार थे; हाथी की मूर्ति बहुत ही अच्छी बनी थी। बाबर और अबुलफ़ज़ल ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है।

बीच में ग्वालियर फिर स्वतन्त्र हो गया; इसलिए बाबर ने एक बहुत बड़ी फ़ौज भेज कर उसे पुनर्वार जीता। जब शेरशाह का प्रभुत्व बढ़ा तब, १५४२ ईसवी में, ग्वालियर के मुसल्मान-गवर्नर अबुल् क़ासिम ने उसे शेरशाह को दे दिया। विक्रमादित्य के बेटे ने बहुत चाहा कि वह मुसल्मानों से ग्वालियर छीन ले। बड़ी वीरता से उसने ग्वालियर पर धावा किया। कई दिनों तक लड़ाई हुई। पर उसकी हार हुई और वह चित्तौर को भाग गया। १७६१ में गोहद के जाट राना भीमसिंह ने ग्वालियर को मुसल्मानों की डाढ़ से निकाला। कुछ काल में मराठों ने उसे छीन लिया। १७७९ में मेजर पोफम ने मराठों को वहां से निकाल कर उसे फिर गोहद के राना को दे दिया। १७८४ में महादजी सेन्धिया ने फिर उसे अपने कब्ज़े में कर लिया और १८०३ ईसवी में जनरल ह्वाइट ने फिर उसे छीना। पर १८०५ में अंग्रेजों ने उसे पुनर्वार मराठों ही के अधिकार में जाने दिया। १८४४ में, महाराजपुर और पनिहर की लड़ाइयों के बाद, फिर ग्वालियर पर अंगरेज़ों का दख़ल हो गया। इस तरह इस प्राचीन नगर की अनेक बार छीन छान हुई। उसके छीनने वालों में अनेक ऐसे होंगे जिनका नाम तक इस समय कोई नहीं जानता; नाम-शेषता भी जिनकी शेष नहीं रह गई। पर ग्वालियर अभी तक बना है; उसका क़िला भी यथास्थित है।

जिस समय १७९४-१८०५ में दौलतराव सेन्धिया का अधिकार ग्वालियर पर हुआ उस समय उसने अपना लश्कर (पड़ाव) क़िले के दक्षिण तरफ़ डाला। कुछ दिनों में सेना के तम्बू तो उखड़ गये पर पड़ाव वहाँ पर वैसे ही पड़ा रहा। धीरे धीरे वहां पर एक शहर बस गया। उसीका नाम लश्कर पड़ा। महाराष्ट्र लोग ग्वालियर को लश्कर ही कहते हैं। लश्कर ही इस समय सेन्धिया की राजधानी है। इस शहर का सराफ़ा बाज़ार देखने लायक है। उसकी सड़क बहुत चौड़ी है और दूर तक चली गई है। उसके दोनों ओर पत्थर के ऊंचे ऊंचे मकान हैं। फूलबाग नामक एक बहुत ही सुन्दर उद्यान में महाराजा सेन्धिया का नया महल है। वह शहर से बिलकुल मिला हुआ है। लश्कर के बीच में बड़ा यानी पुराना महल है। बड़े बड़े सरदारों और राजकर्म्मचारियों के मकान भी वहीं आस पास, हैं।

नई इमारतों में विक्टोरिया-कालेज, डफ़रिन-सराय, मेहमान-घर (Guest House), महाराजा सेन्धिया का महल और जयेन्द्र-भवन नामक प्रासाद देखने की चीजें हैं।

ग्वालियर के पास एक जगह मुरार है। वहां पर पहले अंगरेज़ी छावनी थी। पर गवर्नमेंट ने उसके बदले झाँसी लेकर, मुरार सेन्धिया को दे दिया। मुरार एक बहुत छोटी, पर बहुत साफ़ और स्वास्थ्यकर, जगह है।

ग्वालियर का नाम लेने से जुदे जुदे तीन शहरों का बोध होता है। मुरार, लश्कर और पुराना ग्वालियर। इनमें से लश्कर की दैनन्दिन उन्नति हो रही है और ग्वालियर की अवनति। पुरानी चीज़ की

क़दर अवश्य ही कम हो जाया करती है। फिर भी ग्वालियर में कई ऐसी चीजें विद्यमान हैं जिनकी अब तक क़दर होती है।

ग्वालियर में एक बहुत ही सुन्दर पुरानी जुमा-मसजिद है। गिलट किये हुए उसके गगनभेदी मीनार और गुम्बज़ अभी तक देखने लायक हैं। उसकी मिहराबों पर कुरान की आयतें बड़ी सुघराई से खुदी हुई हैं। स्लीमन साहब ने अपनी रैम्बल्स (Rambles) नामक किताब में उसकी खूब तारीफ की है। शहर के बाहर महम्मद ग़ौस नामक एक महात्मा की क़ब्र है। बाबर और अकबर के समय में महम्मद ग़ौस की बड़ी महिमा थी। यह इमारत बिलकुल पत्थर की है और मुसल्मानी ज़माने की पहली इमारतों में यह बहुत अच्छी समझी जाती है। यह क़ब्र अकबर के समय में बनी थी। इसका क्षेत्रफल १०० वर्गफुट है। इसके चारों तरफ चार मीनार हैं। इसका पत्थर कुछ कुछ पीलापन लिये हुए है। इसका प्राङ्गण ४३ वर्गफुट है और दीवारें साढ़े ५ फुट ऊँची हैं। इसका मण्डप भी खूब ऊँचा है। इसमें जाली का जो काम है वह कहीं कहीं पर बहुत ही खूबसूरत है।

पुराने ग्वालियर में विख्यात गायक तानसेन की समाधि है। वह बिलकुल खुली हुई है और छोटी है। उसका क्षेत्रफल सिर्फ २२ वर्ग-फुट है। इस समाधि के पास इमली का एक पेड़ है। गायक लोग उसका बड़ा मान करते हैं; उसकी पूजा तक करते हैं। उसकी पत्तियों को वेश्यायें बड़े आदर से चाबती हैं। पत्तियां न मिलने पर वे उसकी छाल तक खा जाती हैं। उनका खयाल है कि ऐसा करने से उनकी आवाज़ बहुत ही मीठी और सुरीली हो जायगी। मालूम नहीं, इस

समय यह इमली बनी हुई है या कि छाल डाल समेत नर्त्तकियां उसे हजम कर गईं।

ग्वालियर में सबसे अधिक दर्शनीय इमारत वहांका पुराना क़िला है। वह इतना मज़बूत है कि कोई कोई उसे हिन्दुस्तान का जिबराल्टर कहते हैं। जिबराल्टर का वर्णन ठाकुर गदाधर सिंह ने अपनी "यडवर्ड-तिलक-यात्रा" में खूब किया है। यह क़िला एक पहाड़ी पर बना हुआ है। दूर से देखने में वह पहाड़ का एक छोटा सा टुकड़ा मालूम होता है; क़िला नहीं मालूम होता। जिस पहाड़ी पर वह बना हुआ है वह शहर से ३०० फुट ऊँची है। वह उत्तर-दक्षिण पौने दो मील लम्बी है। चौड़ाई उसकी ६०० फुट से २८०० फुट तक है। उसकी दीवारें ३० से ३५ फुट तक ऊँची हैं। इस किले के भीतर कई चीजें दर्शनीय हैं। उनमें से मान-मन्दिर, कर्ण-मन्दिर, विक्रम-मन्दिर इत्यादि पुरातन राजप्रासाद और सास-बहू का मन्दिर, तेली का मन्दिर और कई एक जैन मन्दिर और मूर्तियां मुख्य हैं। क़िले के ऊपर चढ़कर चारों तरफ़ देखने से ग्वालियर की अपूर्व शोभा एक ही साथ आंखों के सामने आ जाती है। सब ओर पर्वत ही पर्वत देख पड़ते हैं! यहां तक कि धवलपुर तक की पहाड़ियां दिखलाई देती हैं। ग्वालियर के पास गेरू की अनेक पहाड़ियां हैं; उनकी शोभा विलक्षण ही जान पड़ती है। वर्षा-ॠतु में, जब सब पर्वतमालायें हरी भरी हो जाती हैं तब, क़िले के ऊपर चढ़कर उसके चारों तरफ़ देखने से नेत्र निर्निमेष होकर उस प्राकृतिक दृश्य में ऐसे अटक जाते हैं मानों वे वहां पर जड़ दिये गये हों।

क़िले में प्रवेश करने का जो मार्ग उत्तर-पूर्व की तरफ़ है उसमें ६ फाटक हैं। पहले का नाम आलमगीरी फाटक है। औरङ्गजेब के वक्त में ग्वालियर के मुसल्मान-गवर्नर ने उसे १६६० ईसवी में बनवाया था। यह फाटक सादा है। उसके भीतर एक बड़ा कमरा है, जहां मुसलमानी न्यायाधीश बैठ कर न्याय करते थे। इसी लिए उसका नाम कचहरी है।

दूसरे फाटक का नाम बादलगढ़ है। राजा मानसिंह के चचा का नाम बादलसिंह था। उन्हींके नाम पर इसका नाम करण हुआ है। उसके बाहर एक हिंडोला पड़ा रहता था इससे लोग इसे हिंडोला-फाटक भी कहते हैं। यह हिन्दू नमूने का फाटक है; और अच्छा बना है। यहांपर एक लोहे की चद्दर है। उसपर एक लेख खुदा है। उसमें लिखा है कि ग्वालियर के गवर्नर सैयद आलम ने १६४८ ईसवी में उसकी मरम्मत कराई।

यहांपर, पहाड़ी के नीचे, दाहनी तरफ़, गूजरी-महल नामका सुन्दर राज-प्रासाद है। राजा मानसिंह ने उसे अपनी प्यारी रानी गूजरी के लिए बनवाया था। वह ३०० फुट लम्बा और २३७ फुट चौड़ा है। वह दो मंजिला है। वह पत्थर काटकर बनाया गया है। इस समय वह उजाड़ पड़ा है।

तीसरे फाटक का नाम भैरव-दरवाज़ा है। भैरवसिंह नाम का एक कछवाहा राजा यहां हो गया है। उसीके नाम से यह फाटक प्रसिद्ध है। इस पर भी एक लेख है। वह १४८५ ईसवी का है। उसके एक ही वर्ष बाद प्रसिद्ध राजा मानसिंह ग्वालियर की गद्दी पर बैठे थे।

चौथा फाटक गणेश-दरवाज़ा है। वह १४२४-१४५४ ईसवी के बीच का बना है। उसके बाहर "कबूतरखाना" नाम की एक जगह है। वहीं ६० फुट × ३२ फुट × २५ फुट का एक गहरा तालाब है। उसका नाम नूर-सागर है। उसमें खूब पानी रह सकता है। यहीं महात्मा ग्वालप का एक मन्दिर है। उसके पास ही मुसलमानों ने एक छोटी सी मसजिद खड़ी कर देने की कृपा की है। १६६४ ईसवी का खुदा हुआ एक मुसलमानी शिला-लेख उसपर जगमगा रहा है। उसका मतलब है—"यह दुष्ट ग्वालों का मन्दिर था; इसमें उसकी मूर्त्ति भी थी। वह तोड़ डाली गई और मन्दिर बन्द कर दिया गया। खूब चमकीले चन्द्रमा के समान सारी दुनिया को रोशन करने वाले आलमगीर (औरङ्गजेब) ने अपने राज्य-काल में यह मसजिद बनवाई। मसजिद नहीं बल्कि इसे स्वर्ग-मन्दिर कहना चाहिए।" सम्भव है जो मन्दिर इस समय ग्वालप के नाम से प्रसिद्ध है वह पीछे से बना हो।

पांचवे फाटक, लक्ष्मण-दरवाजे, पर पहुंचने के पहले एक मन्दिर मिलता है। वह चतुर्भुज के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। वह पहाड़ की ठोस चट्टान को काट कर बनाया गया है। वह विष्णु का मन्दिर है और बहुत पुराना है। वह ८७६ ईसवी का बना हुआ है। उसमें एक शिलालेख भी है। यहाँपर एक तालाब है; उसके सामने ताजनिज़ाम की क़ब्र है। इब्राहीम लोधी के समय में वह देहली के अमीरों में था। १५१८ इसवी में इस फाटक पर हल्ला करते वक्त वह मारा गया था।

हथियापौर, अर्थात् हाथी-दरवाज़ा, मानसिंह ने बनवाया था। वह उसके महल से मिला हुआ है। यहीं पर पूर्व्वोल्लिखित हाथी की एक मूर्त्ति थी।

इस क़िले में उत्तर पश्चिम की तरफ़ तीन फाटक हैं और दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ आने जाने का जो रास्ता है उसमें पांच। इन पाँचों में से तीन फाटकों को जनरल व्हाइट ने तोड़ डाला था।

ग्वालियर के क़िले के भीतर पानी का बड़ा सुकाल है। उसमें अनेक कुवें, तालाब और कुण्ड हैं। इसी कारण, उत्तरी हिन्दुस्तान में वह बहुत ही दृढ़ और अप्रवेश्य किला समझा जाता है। उसके भीतर सूर्य्य-कुण्ड सबसे पुराना है। वह २७५ ईसवी के लगभग बना था। वह ३५० फुट लम्बा और १८० फुट चौड़ा है। वह गहरा भी खूब है। उसके सिवा तिकोनिया-तालाब, जौहर-तालाब, सास-बहू का तालाब, गङ्गोला-तालाब और धोबी-तालाब आदि और भी कई तालाब हैं और सब बड़े बड़े हैं। जब अल्तमश ने ग्वालियर पर क़ब्ज़ा किया था तब वहां की राजपूत स्त्रियाँ जौहर करके जल मरी थीं। जौहर-तालाब उसीका स्मरण दिलाता है और है भी उसी जगह जहां जौहर नामी स्त्रीमेध यज्ञ हुआ था।

ग्वालियर के क़िले में ६ पुराने महल हैं। उनमें से गूजरीमहल का जिक्र ऊपर आ चुका है। दूसरे का नाम मान-मन्दिर है। वह ग्वालियर के प्रसिद्ध राजा मानसिंह का महल है। वह १४८६—१५१६ के क़रीब बना था। १८८१ में उसकी मरम्मत की गई है। उसका नाम चित्र-मन्दिर भी है। यह नाम इसलिये पड़ा है कि उसकी दीवारों पर चित्रों

की बहुत अधिकता है। हंस, हाथी, मोर आदि के जो चित्र यहां पर बने हैं उनका रङ्ग अभी तक ख़राब नहीं हुआ है। देखने से जान पड़ता है कि अभी कल का है। चित्र भी बहुत सुन्दर और चित्ता-कर्षक हैं। इस महल के दो खण्ड ऊपर हैं और दो ही नीचे। परन्तु, आप जानते हैं, इसमें आजकल रहता कौन है? इसमें रहते हैं बूढ़े बूढ़े चिमगादड़ों के कुटुम्ब! पूर्व की तरफ़ वह ३०० फ़ुट लम्बा और १०० फ़ुट ऊँचा है और दक्षिण की तरफ़ बरबाद हालत में पड़ा है। इसमें जहां जहां पर गवाक्ष-जाल—जाली का काम—है, वहां वहां पर, बहुत बड़ी कारीगरी की गई है। इस महल की सुन्दरता की वे लोग भी प्रशंसा करते हैं जो पुराने ज़माने की यञ्जिनियरी की जांच करने में बहुत योग्य समझे जाते हैं।

मान-मन्दिर से उत्तर कर्ण-मन्दिर है। उसे कीर्ति-मन्दिर भी कहते हैं। वह दो मञ्ज़िला है। उसका एक कमरा ४३ फ़ुट लम्बा और २८ फ़ुट चौड़ा है। उसमें बहुत ही खूबसूरत खम्भों की दो लैनें हैं; उन्हींके सहारे उसकी छत थँभी है। इस महल में पलस्तर का काम देखने लायक़ है।

मानमन्दिर और कर्णमन्दिर के बीच में विक्रम-मन्दिर है।

क़िलेके उत्तर तरफ़ जहांगीर और शाहेजहाँ के महल हैं। उनमें कोई विशेषता नहीं।

इस क़िले के भीतर हिन्दुओं के ११ मन्दिर हैं।

(१) ग्वालप का मन्दिर जैन-मन्दिर

(२) चतुर्भुज का मन्दिर (८) सूर्य्यदेव
(३) जयन्ती-थोरा (९) मालदेव } के मन्दिर
(४) तेली का मन्दिर (१०) धोंड़ादेव
(५-६) सास-बहू का मन्दिर (११) महादेव

ये जितने मन्दिर हैं सब को मुसलमानों ने थोड़ा बहुत छिन्न-भिन्न कर डाला है ; परन्तु अब तक उनकी पूजा-आर्चा कभी कभी होती है और दूर-दूर से लोग उनको देखने आते हैं। ग्वालियर और चतुर्भुज के मन्दिरों का नाम ऊपर आ चुका है। जयन्ती-थोरा में "थोरा" शब्द का क्या अर्थ है। समझ में नहीं आता। १२३२ ईसवी में अल्तमश ने उसको गिराकर नाम-शेष कर दिया। पर उसकी जगह अब तक मालूम है ; वहां पर पन्द्रहवीं सदी के कुछ शिलालेख भी हैं।

तेली का मन्दिर एक प्रसिद्ध मन्दिर है। वह ग्यारहवीं शताब्दी का बना हुआ है। १८८१ में उसकी मरम्मत हुई है। लोगों को विश्वास है कि वह किसी तेली का बनवाया हुआ है। वह ६० वर्गफुट में बना हुआ है। ग्वालियर में इससे ऊंची इमारत और कोई नहीं। इसका द्वार ३५ फुट ऊँचा है ; इसके ऊपर, बीच में, गरुड़ की एक बहुत अच्छी मूर्त्ति है। आदिमें वह विष्णु का मन्दिर था ; परन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से वह शिवालय हो गया है। यह सारी इमारत सैकड़ों प्रकार की मूर्त्तियों से भरी पड़ी है। इसकी मूर्त्तियां इत्यादि जो तोड़-फोड़ डाली गई थीं ; या जो गिर पड़ी थीं, ढूंढ़ ढूंढ़ कर मन्दिर के पास रख दी गई हैं।

सास-बहू के नाम के दो मन्दिर हैं—एक बड़ा, दूसरा छोटा। लोगों का ख़याल है कि किसी "सास-बहू" ने उनको बनवाया था। कोई कोई इन मन्दिरों का नाम "सहस्र बाहु" बतलाते हैं। परन्तु ये दोनों नाम निर्मूल जान पड़ते हैं। क्योंकि बड़े मन्दिर के भीतर बरामदे में एक बहुत लम्बा शिलालेख खुदा हुआ है। उसमें इसका नाम "पद्मनाथ" लिखा है। यह शिलालेख सम्बत् ११५० अर्थात् सन् १०९३ ईसवी का है। यह मन्दिर महीपाल नामक कछवाहा (कच्छपारि) राजा का बनवाया हुआ है। बड़ा मन्दिर १०० फुट लम्बा और ६३ फुट चौड़ा है। ऊँचाई उसकी इस समय सिर्फ़ ७० फुट है। परन्तु जनरल कनिंहाम अनुमान करते हैं कि किसी समय वह १०० फुट ऊँचा था। इस मन्दिर में पत्थर का काम बहुत ही अच्छा है। इसके बीच का कमरा ३१ वर्गफुट है। इसकी छत बहुत बड़ी और भारी है। उसका बोझ थाँभने में सहायता देने के लिए चार बड़े बड़े खम्भे हैं। छत को देखकर आश्चर्य्य होता है। उसकी बनावट को देखकर उसके बनाने वाले कारीगरों की सहस्र मुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। छोटा मन्दिर चारों तरफ़ से खुला हुआ है। उसमें १२ खम्भे हैं। खम्भे सब गोल हैं। उसमें, और बड़े मन्दिर में भी, नर्तकी स्त्रियों की बहुत सी मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं। उनमें बड़ी कारीगरी दिखलाई गई है।

सास-बहू के बड़े मन्दिर में जो शिलालेख है उसके विषय में हमको कुछ कहना है। यह लेख पहले पहल हमने डाक्टर राजेन्द्रलाल की "इण्डोआर्यन्स" नामक पुस्तक में देखा। परन्तु वहांपर यह बहुत



की त्रुटित दशा में थी ; इससे इसकी तरफ़ हमारा ध्यान अच्छी तरह नहीं गया था. पर "इण्डियन ऐण्टिक्वेरी" में जब हमने कोलहार्न साहब के द्वारा सम्पादित किया हुआ यह लेख देखा तब हम इसकी सुन्दरता और रचना-वैचित्र्य पर मोहित हो गये। इस लिए इसकी मूललिपि देखने के लिए हमारे चित्त में प्रवल इच्छा जागृत हो उठी। इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए हम शीघ्र ही झांसी से ग्वालियर गये। वहां हमने इस प्रशस्तिरूप लेखको प्रत्यक्ष देखा और क़िले में जितनी इमारतें देखने लायक़ थीं उनको भी देखा।

गोपगिरि (ग्वालियर) में पद्मपाल नामक एक राजा था। उसने "मेरु-पर्वत के समान" एक बहुत ऊँचा विष्णु-मन्दिर बनवाना आरम्भ किया। वह बन न चुका था कि राजा मर गया। उसके पीछे उसके भाई सूर्यपाल का पुत्र महीपाल राजा हुआ। उसने सिंहासन पर बैठते ही दो काम किये। एक तो उसने इस मन्दिर को पूरा किया ; दूसरे राज्यकन्या के लिए एक अच्छा वर ढूंढ़ कर उसका विवाह कर दिया। इस विषय का शिलालेख सुनिए—

> तच्च द्वयं कृतमनेन विवेकभाजा
>
> राजात्मजा मदनपालवराय दत्ता।
>
> श्री पद्मनाथ सुरमन्दिरमेतदुच्चै—
>
> नींतं समाप्तिमविनाशि यशःशरीरम् ॥

कनिंहाम साहब ने उसकी ऊँचाई जो १०० फ़ुट अनुमान की है सो ठीक मालूम होती है। इस शिलालेख में, इस मन्दिर की ऊँचाई के विषय में इस तरह लिखा है—

प्रजाभर्त्रा तेन क्षितितिलकभूतेन सदनं
हरेर्धर्म्मज्ञेन त्रिदशसदृशा कारितमदः।
वदाम्यस्योच्चैस्त्वं कथमिव गिरा यस्य शिखरं
समारूढः सिंहो मृगमिव मृगाङ्कस्थमशितुम् ॥

अर्थात् इस प्रजापालक, धर्मज्ञ, नरपतितिलक, पद्मपाल राजा के बनवाये हुए इस विष्णु-मन्दिर को उँचाई मैं वाणी से किस प्रकार वर्णन करूं ? यह तो इतना ऊँचा है कि इसके शिखरपर बैठा हुआ सिंह, मृगाङ्क (चन्द्रमा) के मृग को, मानो निगल जाना चाहता है।

इस मन्दिर में जो शिलालेख है वह प्रशस्ति के रूप में है। उसमें ११२ श्लोक हैं। उनमें पहले पद्मपाल के वंशजों का थोड़ा थोड़ा वर्णन है ; फिर स्वयं पद्मपाल का। पद्मपाल का वर्णन कुछ अधिक है। परन्तु लेख का अधिक भाग राजा महीपाल की तारीफ़ से भरा हुआ है। महीपाल ही की आज्ञा से यह प्रशस्ति बनी थी। संस्कृत में सब से अच्छे काव्य का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। यह कविता मणिकण्ठ सूरि नामक कवि की रचना है। माहुल सिंहराज और पद्मनाभ नाम के दो शिल्पियों ने इस प्रशस्ति को खोदा था। मणिकण्ठ ने इसकी रचना ११४९ वैक्रमीय संवत में की थी। मणिकण्ठ जी अपनी तारीफ़ इस प्रकार करते हैं—

भारद्वाजेन मीमांसान्यायसंस्कृत बुद्धिना।
कवीन्द्ररामपौत्रेण गोविन्दकविसूनुना॥ १०४ ॥
कविना मणिकण्ठेन सुभाषितसरस्वता।
प्रशस्तिर्द्विजमुख्येन रचितेयमनिन्दिता॥ १०५ ॥

मणिकण्ठ के पिता भी कवि थे और पितामह भी। फिर मणिकण्ठ भला क्यों न अच्छे कवि होते ? आप कवि भी थे, नैय्यायिक भी थे और मीमांसक भी थे। सुभाषित के तो आप समुद्र ही थे! मणिकण्ठ की यह पिछली उक्ति हमको बहुत अच्छी लगी। क्योंकि अपने को सुभाषित का समुद्र बतलाने में मणिकण्ठ ने गर्वोक्ति नहीं की; बात सच्ची कही है। आपने इस प्रशस्ति में जो महीपाल की प्रशंसा की है उसके अन्तर्गत आपने २५ श्लोक ऐसे कहे हैं जो दो दो अर्थों से भरे हुए हैं और बड़े ही अपूर्व हैं। इन श्लोकों में आपने महीपाल राजा से जिनकी जिनकी समता दिखलाई है उनके नाम हम नीचे देते हैं—

१ ब्रह्मा	९ सूर्य	१७ कर्ण
२ विष्णु	१० चन्द्रमा	१८ समुद्र
३ बलभद्र	११ व्यास	१९ सिंह
४ काम	१२ भगीरथ	२० हाथी
५ शङ्कर	१३ रामचन्द्र	२१ कमल
६ कार्तिकेय	१४ युधिष्ठिर	२२ कैरव
७ इन्द्र	१५ भीम	२३ आभूषण
८ कुवेर	१६ अर्जुन	२४ चन्दन
		२५ कृष्ण

प्रति श्लोक के चौथे चरण में कवि ने महीपाल से यह पूछा है कि जिनकी समता आप में पाई जाती है, बतलाइए, उनके आप कौन हैं ? अर्थात् उनसे आपका क्या सम्बन्ध है ? विषयान्तर हुआ—

जाता है; परन्तु यह कविता इतनी अच्छी है कि हम इसके दो एक उदाहरण दिये बिना नहीं रह सकते। महीपाल का साम्य विष्णु में देखिये—

लक्ष्मीपतिस्त्वमसि पङ्कजचक्र चिन्हं
पाणिद्वयं वहसि भूप भुवं बिभर्षि।
श्यामं वपुः प्रथयसि स्थिति हेतुरेक-
स्त्वंकोऽसि नोतिविजितोद्धव माधवस्य। ३६

आप लक्ष्मीपति अर्थात् सम्पत्तिमान् हैं; आपके करद्वय में कमल और चक्र के चिन्ह हैं; आप पृथ्वी को धारण (पालन) करते हैं; आपका शरीर श्यामल है; आप ही की स्थिति से सब (प्रजा) की स्थिति है; नीति में आपने उद्धव को भी जीत लिया है। अतएव, कहिए, आप विष्णु के कौन हैं? क्योंकि वे भी लक्ष्मीपति हैं; उनके भी हाथों में कमल और चक्र हैं; उन्होंने भी (वराह होकर) पृथ्वो को धारण किया है; उनका भी शरीर श्यामल है; पालनकर्ता होने के कारण वे भी सबकी स्थिति के हेतु हैं; और उन्होंने भी उद्धव को नीति में परास्त किया है।

अब कमल की समता देखिये—

सद्म श्रियस्त्वमसि मित्र कृत प्रमोद-
स्त्वं राजहंससमलं कृतपादमूलः।
स्वामिन्नधः कृतजड़ोऽसि गुणाभिरामः
कस्त्वं स्मिताढ्यमुखपङ्कज पङ्कजस्य॥ ५५॥

अधखिले कमल के समान मुसकान-युक्त मुख-कमल को धारण

करने वाले हे स्वामिन् आप लक्ष्मी के घर हैं, (राजों के यहां लक्ष्मी की कमी नहीं); मित्रों से आपको आनन्द प्राप्त होता है; राजों में हंस के समान शोभायमान राज-वर्ग आपके चरणों की शोभा बढ़ाया करते हैं अर्थात् पैरों पर लोटा करते हैं; जड़ों को आपने नीचा दिखाया है; शौर्य, औदार्य आदि गुणों से आप रमणीय हो रहे हैं। अतएव कृपा करके बतलाइए, आप कमल के कौन हैं; क्योंकि कमल में भी यही सब बातें पाई जाती हैं। वह भी लक्ष्मी का घर है (कहते हैं कमल में लक्ष्मी रहती हैं); मित्र (सूर्य) के उदय से उसे भी प्रसन्नता होती है; उसके भो पादमूल (जड़) की शोभा राजहंस पक्षी बढ़ाते हैं; उसने भी जल (जड़—ल और ड़ का अभेद माना जाता है) को नीचे कर दिया है, अर्थात् वह सदैव जल के ऊपर रहता है; उसमें भी गुणों (तन्तुओं) की रमणीयता रहती है।

ग्वालियर के क़िले में शेष जो चार मन्दिर हैं वे विशेष प्रसिद्ध नहीं। इसलिए उनके विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

यहां पर जैनों का भी एक मन्दिर है। वह ११०८ ईसवी के लगभग का बना हुआ है। वह हथियापौर और सास-बहू के मन्दिरों के बीच में है। क़िले की पूर्वी दीवार से सट कर वह बना हुआ है। उसे पहले बहुत कम लोग जानते थे। १८४४ ईसवी में जनरल कनिंहाम ने उसका पता लगाया और उसकी प्रसिद्धि की।

क़िले की दीवार के ठीक नीचे पहाड़ी के भीतर, चट्टानों को काट कर जो मूर्तियां यहां पर बनी हैं वे उत्तरी भारतवर्ष में अद्वितीय हैं। वे अनेक हैं और बहुत बड़ी बड़ी हैं। पर्वत में गुफायें खोदी गई हैं

उन्हीं के भीतर पत्थर काट काट कर ये मूर्त्तियां बनाई गई हैं। सब मिला कर २१ मूर्तियां है। कोई कोई मूर्ति ५० फुट से भी अधिक ऊँची है। ये मूर्तियां आदिनाथ, नेमिनाथ, महावीर और चन्द्रप्रभ आदि जैन तीर्थङ्करों की हैं और प्रायः पन्द्रहवीं शताब्दी की बनी हुई हैं। इनमें से बहुतेरी मूर्तियां बाबर के हुक्म से, १५२७ ईसवी में तोड़ डाली गईं थीं। उस समय उनको बने हुए कोई ६० ही वर्ष हुए थे। इस विषय में बाबर ने अपनी दिनचर्य्या में एक जगह लिखा है—"जैनों ने इस पहाड़ी को काट कर मूर्तियां बनाई हैं। कोई मूर्ति छोटी है; पर कोई चालीस चालीस फुट ऊँची हैं। ये सब मूर्त्तियां नङ्गी हैं। उन पर कपड़े का एक टुकड़ा भी नहीं। यह स्थान बहुत रमणीय है परन्तु इसमें सबसे बड़ा दोष यह है कि यहां मूर्तियों की अधिकता है। मैंने हुक्म दिया था कि सब मूर्तियां बरबाद कर दी जायँ। पर वे बिलकुल तोड़ी नहीं गईं; केवल छिन्न भिन्न कर डाली गईं। अब मैंने सुना है कि टूटे हुए सिरों को जैनों ने मरम्मत करा-कर उन्हें यथास्थान जुड़वा दिया है।" तोमर-वंशी राजों के समय के कई शिलालेख इन गुफाओं के भीतर हैं। ग्वालियर के क़िले में ये गुफ़ा-मन्दिर और मूर्तियां भी देखने की चीज़ हैं।

बादशाही कारागार क़िले के पश्चिम तरफ़ है। उसमें ९ कमरे हैं। इसलिए उसका नाम नौचौकी पड़ गया है। यहीं पर औरङ्गजेब ने अपने बेटे महम्मद और अपने भाई दारा और मुराद के बेटों को कैद किया था। [दिसम्बर १९०४

बनारस ।

बनारस पर अंगरेजी में अनेक पुस्तकें हैं। शेरिंग साहब ने "हिन्दुओं का पवित्र नगर" (Sacred city of the Hindus) नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी है। जो लोग बनारस जाते हैं उनके लिए उन्होंने एक और छोटी सी किताब भी लिखी है। उसका नाम है "Handbook for visitors to Benares"। डाक्टर लाज़रस ने रेबरंड पार्कर-कृत बनारस का एक गाइड भी प्रकाशित किया है। केन साहब की "पिक्चरस्क इण्डिया" और पादड़ी केनड़ी की "बनारस और कमाऊं" नाम की पुस्तकों में भी बनारस का वर्णन है। क्रिश्चियन लिटरेचर सोसाइटी ने भी एक छोटी सी किताब बनारस पर प्रकाशित की है। इनके सिवा बनारस के गज़ेटियर, हण्टर के इम्पीरियल गज़ेटियर, कनिंगहम के आरकियालाजिकल सर्वे की रिपोर्टों में भी बनारस का हाल है। संयुक्तप्रान्त सम्बन्धी पुरानी इमारतों

और पुराने शिलालेखों के विषय में फूरर साहब की पुस्तक में भी बनारस की बहुत सी बातें हैं। एक महाराष्ट्र-महाशय ने, मराठी में, एक किताब लिखी है। उसमें भी बनारस का अच्छा वर्णन है। पर हिन्दी में बनारस-वर्णन पर एक भी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। पुराणों में भी, कहीं कहीं, बनारस का हाल है।

प्राचीन बनारस।

बनारस बहुत पुराना शहर है। उसका संस्कृत नाम काशी या वाराणसी है। पुराने ज़माने में वहां काश नाम का एक राजा हो गया है। उसीके नामानुसार शायद काशी नाम पड़ा है। वरुणा और असी नामक नदियों के सङ्गम पर, या उनके बीच में, होने के कारण इसका दूसरा नाम वाराणसी हुआ। बनारस इसी वाराणसी का अपभ्रंश है। विष्णुपुराण, भागवत और हरिवंश आदि पुराणों में काशी का कई जगह वर्णन है। उनमें काशी के पुराने राजों का भी थोड़ा बहुत हाल है। काश, दिवोदास और अजातशत्रु आदि काशी के मशहूर राजों में से थे। किसी समय काशी के आस पास का देश पुण्ड्र या पुण्ड्रक कहलाता था और उसके राजा पौण्ड्रक। पुण्ड्र गन्ने को कहते हैं। पौंडा पुण्ड्र ही का अपभ्रंश है। पुराने ज़माने में "पुण्ड्रक-शर्करा" बहुत प्रसिद्ध थी। अब भी बनारस की चीनी मशहूर है।

विष्णुपुराण में लिखा है कि काशी को एक दफ़े विष्णु के सुदर्शन-चक्र ने जला कर खाक कर दिया था।

बनारस कितना प्राचीन शहर है, ठीक ठीक नहीं मालूम। ईसा के १२०० वर्ष पहले तक उसके अस्तित्व का पता चलता है। शाक्य-मुनि ने, ईसा के ६०० वर्ष पहले, जिस समय पहले पहल अपने चेलों को बौद्ध धर्म का उपदेश दिया, उस समय बनारस एक विशाल नगर था। बनारस से तीन मील उत्तर एक जगह सारनाथ है। उसे लोग धमेख कहते । वहीं बुद्ध ने पहले पहल धर्मोपदेश किया था। किसी किसीका मत है कि बनारस पहले वहीं बसा हुआ था। बनारस के आस पास की जमीन को देखने से जान पड़ता है कि उसने कई दफ़े अपना स्थान परिवर्तन किया है। जिस जगह को लोग आजकल सारनाथ कहते हैं, उसका नाम बौद्धों की पुस्तकों में "मृग दाव" है। सम्भव है, किसी समय, वहां जङ्गल रहा हो और उसमें हिरन रहते रहे हों।

होएनसङ्ग के समय में बनारस

सातवें शतक में चीन का प्रसिद्ध बौद्ध संन्यासी होएनसङ्ग हिन्दुस्तान में आया। वह पञ्जाब की तरफ़ से घूमता हुआ बनारस पहुंचा। वह अपने प्रवास-वर्णन में लिखता है कि उस समय बनारस-राज्य का घेरा ८०० मील था। ख़ास शहर चार मील लम्बा और एक मील चौड़ा था। सब लोग खुश थे। अमीरों के यहां अनन्त धन-दौलत थी। सब लोग सौम्य स्वभाव के और विद्याव्यसनी थे। हिन्दू बहुत थे, बौद्ध कम। प्रान्तभर में ३० संघाराम थे; उनमें कोई ३००० के क़रीब बौद्ध पुजारी थे। हिन्दुओं के मन्दिरों की संख्या एक सौ

थी। उनमें, सब मिला कर, १०, ००० पुजारी थे। लोग प्रायः महा-देव के उपासक थे। ख़ास बनारस में २० देव-मन्दिर थे। महेश्वर की एक प्रतिमा १०० फुट ऊँची थी! वह ताँबे की थी। वह इतनी अच्छी बनी थी कि जान पड़ता था कि वह सजीव है।

शहर के उत्तर-पूर्व-दिशा में एक स्तूप था। उसके सामने पत्थर का एक स्तम्भ था। वह स्फटिक के समान चमकता था। वरुणा नदी से दो मील के फासले पर "मृग-दाव" का प्रसिद्ध संघा-राम था। उसके ८ भाग थे। वह कई मंज़िला था। उसके हाते में २०० फुट ऊँचा एक विहार था। उसकी छत के ऊपर एक आम (फल) सोने का बना हुआ था। विहार में पूरे क़द की एक बुध की मूर्ति थी। उसी जगह शाक्यमुनि ने अपने धर्मोपदेश रूपी चक्र को सब से पहले गति दी थी।

मध्यकालीन बनारस

अनेक कारणों से बौद्ध मत का धीरे धीरे ह्रास होता गया। बौद्धों में तान्त्रिक-सम्प्रदाय की शक्ति जैसे जैसे बढ़ती गई, वैसे ही वैसे उनकी नैतिक शक्ति क्षीण होती गई। इस अवस्था में कुमारिल-स्वामी और शङ्कराचार्य आदि हिन्दू-आचार्यों के आक्रमण से बौद्ध धर्म के पैर इस देश से उखड़ गये, उनके "बिहार" बन्द हो गये; उनके "संघाराम" उजड़ गये; उनके अनुयायी यहां से भाग खड़े हुए। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में शायद एक भी बौद्ध बनारस में न रह गया। सारनाथ के आस पास की बौद्ध बस्ती जला दी गई। बौद्धों के पूजा-

स्थान, उनकी मूर्तियां और उनके पुजारी तक जला दिये गये। अबतक सारनाथ में हड्डियाँ, लोहा, लकड़ी, राख, पत्थर ज़मीन में गड़े हुए मिलते हैं।

बनारस में दो पुराने ताम्र-पत्र मिले हैं। वे संवत् ११८१ और ११८५ के हैं। राजा गोबिन्दचन्द्रदेव के वे दानपत्र हैं। उनसे मालूम होता है कि कान्यकुब्ज के राजों का राज्य बनारस तक था। वे वाराणसी के भी राजा कहलाते थे। परन्तु बनारस का उस समय का इतिहास बहुत ही कम ज्ञात है। ११९३ ईसवी में मुहम्मद ग़ोरी ने जबसे जयचन्द्र को परास्त किया तब से बनारस पर मुसलमानों का अधिकार हुआ और ६०० वर्ष तक बराबर बना रहा। उन्होंने बनारस के बड़े बड़े मन्दिरों को मसजिदों और मकबरों में परिवर्तित कर दिया और छोटों को गिरा कर उनके ईंट-पत्थर से अपने मकान और मसजिदें वग़ैरह बनवाईं। अलाउद्दीन इस बात को बड़े घमण्डसे कहता था कि सिर्फ बनारस में उसने १००० मन्दिर गिरा कर उन्हें ज़मीन के बराबर कर दिया। औरङ्गजेब ने उसका नाम मुहम्मदाबाद रक्खा और उसके नये पुराने मन्दिरों को खोद कर ख़ुदा के सब से बड़े बन्दों की फ़िहरिस्त में अपना नाम दर्ज कराया। यही कारण है जो दो तीन सौ वर्ष से अधिक पुरानी एक भी पूरी इमारत बनारस में विद्यमान नहीं।

आधुनिक बनारस

अठारहवें शतक में बनारस-नगर अवध के नव्वाब सफ़दरजंग के कब्जे में आया। १७३८ ईसवी में मनसाराम नामक एक पुरुष ने

अपने बेटे बलवन्तसिंह के लिए नवाब से राजा का ख़िताब और बनारस का इलाक़ा प्राप्त किया। १७६३ में बलवन्तसिंह ने शाह-आलम और शुजाउद्दौला के साथ बंगाले पर चढ़ाई की। परन्तु बक्सर की लड़ाई में अंगरेजों की जीत होने पर बलवन्तसिंह ने उनसे मेल कर लिया। अंगरेज़ों ने बनारस की ज़मींदारी पर कर लगाकर, अर्थात् माल-गुजारी देने के वादे पर, बलवन्तसिंह का क़ब्ज़ा बना रहने दिया, बल-वन्तसिंह के बेटे चेतसिंह ने वारन हेस्टिंग्ज़ की मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ काम नहीं किया; उसकी अनुचित आज्ञा को नहीं माना। इससे हेस्टिंग्ज़ ने चेतसिंह को क़ैद कर लिया; क़ैद से निकल कर चेतसिंह ने अँगरेज़ों पर हमला किया; पर कामयाबी न हुई। चेतसिंह की जमींदारी छिन गई। उसका कुछ हिस्सा बलवन्तसिंह के पौत्र महीपनारायणसिंह को मिला। वर्तमान काशी-नरेश, महाराज श्री प्रभुनारायणसिंह, महीप-नारायणसिंह के बाद तीसरे महीप हैं।

जब चेतसिंह की जमींदारी छिन गई तब उसके प्रम्बन्ध के लिए बनारस में च्यरी साहब रेज़िडंट नियत किये गये। उस समय लखनऊ का नव्वाब वज़ीरअली बनारस में था वह गद्दी से उतारकर बनारस में रखा गया था। १७९९ ईसवी में वह बिगड़ खड़ा हुआ और च्यरी साहब के साथ दो अँगरेज़ और मारे गये। पीछे से वज़ीर-अली पकड़ा गया। और आमरण कलकत्ते में क़ैद रहा।

शकल-सूरत आदि

अनुमान किया जाता है कि सब से पुराना नगर सारनाथ के

पास था। पीछे से नगर का मध्य भाग वरुणा नदी के उत्तर, कहीं पर, रहा। वर्तमान नगर के उत्तर की ओर जो जगह खाली पड़ी है उसमें मन्दिरों और मसजिदों आदि के भग्नावशेष अभी तक पाये जाते हैं। इससे हालूम होता है कि मुसल्मानों के समय तक बनारस वरुणा के दक्षिणी किनारे पर था। इस समय बनारस ठीक गङ्गा के तट पर है। उसकी शक्ल अर्द्धचन्द्राकार अथवा धन्वाकार है। दशाश्वमेध घाट से नाव पर सवार होकर राजघाट के पुल की तरफ़ जाने में, विशेष कर के सुबह, शहर का दृश्य अच्छी तरह देख पड़ता है। गंगा तट पर नगर की धन्वाकार बस्ती उस समय अच्छी तरह आंखों के सामने आ जाती है।

बनारस में मकान सब पत्थर के हैं। कोई कोई मकान पांच पांच छः छः खण्ड के हैं। गलियां बहुत तंग हैं; बस्ती बेहद घनी है। यात्रियों की हमेशा आमद रफ़्त रहती है। ग्रहण, मेले-ठेले, उत्सव और पर्व आदि में बाहर से आने वाले आदमियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है। बस्तो घनी और गन्दी होने और काशीवास करने के इरादे से अनेक लूले, लंगड़े, अन्धे और बीमार आदमियों से भर जाने के कारण, बनारस की आबोहवा बिगड़ी रहती है। मन्दिर, गली-गली में हैं। बंगाली, नैपाली, महाराष्ट्र आदि हिन्दुस्तान के प्रायः सब प्रान्तों के लोग यहां रहते हैं। उनके महल्ले अक्सर अलग अलग हैं। शहर से पश्चिम और गंगा से कोई तीन मील की दूरी पर एक जगह का नाम सिकरौल है। वहीं बनारस की छावनी और सिविल-लाइन्स वगैरह है।

बनारस में कमिश्नर और जिले के मामूली हाकिम रहते हैं। अवध-रुहेलखण्ड और बंगाल-नार्थ-वेस्टर्न रेलवे के कई स्टेशन हैं। पिछली रेलवे ने सारनाथ के पास भी एक स्टेशन खोला है। अवध-रुहेलखण्ड रेलवे का राजघाट में, गंगा पर, पुल है। इस रेलवे की गाड़ियां मुग़लसराय से, बनारस और लखनऊ होकर, बराबर सहरानपुर तक चली जाती हैं।

बनारस में जलकल है, पानी गंगा से आता है। गन्दगी निकालने के लिए मोरियां भी हैं।

व्यापार

किसी ज़माने में बनारस रेशमी और ज़री के कपड़े के काम में अपना सानी नहीं रखता था। पर विलायती व्यवसायियों ने इस रोज़-गार को बरबाद कर दिया। अब भी बनारस में इसका व्यवसाय होता है। कुछ दिन से "काशी सिल्क" नामक रेशमी कपड़े का प्रचार हुआ है। उसपर लोगों की प्रीति होने लगी है। देहली-दर्बार के समय जो प्रदर्शनी हुई थी उसमें बनारस के बहुमूल्य वस्त्रों की बड़ी तारीफ़ हुई थी। तिलकोत्सव के समय महारानी अलेग्ज़ांडरा के पहनने के लिए जो पोशाक बनी थी वह बनारस ही के कपड़े की थी।

बनारस में शकर का रोज़गार पहले बहुत होता था। अब भी कुछ कुछ है।

पीतल और जर्मन-सिल्वर के नक़्क़ाशीदार और सादे बर्तन, सोने-चांदी के जेवर, देवताओं की मूर्त्तियां, लकड़ी के खिलौने और तम्बाकू के लिए भी बनारस मशहूर है।

घाट

बनारस में सब मिला कर कोई ५० घाट हैं। उनमें से कुछ के नाम ये हैं—असीघाट, शिवालयघाट, केदारघाट, मुंशीघाट, दशाश्वमेध-घाट, मानमन्दिरघाट, मणिकर्णिकाघाट, सेन्धियाघाट, पञ्चगंगाघाट, त्रिलोचनघाट, हनुमानघाट, राजघाट, और वरुणा-संगमघाट।

असीघाट सबसे दक्षिण है। वहां से रामनगरघाट करीब १ मील दक्षिण है। वहीं से रामनगर जाने वाले गंगा पार करते हैं। रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। यह घाट यद्यपि बहुत प्रसिद्ध है और काशी के पांच प्रसिद्ध घाटोंमें से है तथापि दशा इसकी अच्छी नहीं। यहीं पर असी नाम का नाला गंगा में गिरता है। बरसात को छोड़कर और मौसमों में वह सूखा पड़ा रहता है।

शिवालयघाट बहुत सुन्दर घाट है। उसीके ऊपर चेतसिंह का महल है। महल अभीतक अच्छी हालत में है। वह गवर्नमेंट के कब्ज़े में है। उसकी उत्तर तरफ़ की दीवार में पांच खिड़कियां हैं। उन्हींमें से एक से होकर चेतसिंह हेस्टिंग्ज़ के डरसे, १७८१ ईसवी में, भागे थे। अब लोग इस मकान को "खाली-महल" कहते हैं।

केदारघाट बनारस के मशहूर घाटोंमें से है। वहां बंगाली और तैलंगी लोगों की अधिक भीड़ रहती है। उसी के ऊपर केदारनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बड़ा है। घाट के नीचे "गौरीकुण्ड" नाम का एक जलाशय है। उसके जल की बड़ी महिमा है।

मुंशीघाट बनारस के प्रायः सब घाटों से अधिक अच्छा है। वह

नागपुर के राजा के दीवान मुंशी श्रीधर का बनवाया हुआ है। इस घाट के ऊपर की इमारत देखने लायक है।

दशाश्वमेधघाट बनारस के पाँच पवित्र घाटोंमें से है। ग्रहण के समय वहां पर बड़ी भीड़ होती है। कहते हैं, वहाँ ब्रह्मा ने दस दफ़े अश्वमेध यज्ञ किया था। इसी लिए उसका नाम दशाश्वमेध हुआ। इसकी महिमा प्रयाग के बराबर समझी जाती है।

मानमन्दिरघाट। यह घाट महाराजा मानसिंह के मानमन्दिर के नीचे ही है।

मणिकर्णिकाघाट काशी के सब घाटों से अधिक प्रसिद्ध और पवित्र माना जाता है। यह घाट सब घाटों के बीच में है। यहीं पर तारकेश्वर और सिद्धविनायक के मन्दिर हैं। यहां पर जो कुण्ड है उसमें शङ्कर के कान की मणि गिर पड़ी थी। इसी से इसका नाम मणिकर्णिका हुआ। कहते हैं, विष्णु ने इसे अपने चक्र से खोदा था और अपने पसीने से भरा था। इसी के पास वह जगह है जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं।

सेंधियाघाट वायजाबाई सेंधिया का बनवाया हुआ है। वायजा-बाई दौलतराव सेंधिया की रानी थी। बन चुकने के पहले ही यह घाट-जमीन में धँस गया। इसके दक्षिण जो मन्दिर है उसमें ऊपर से नीचे तक एक दरार हो गई है।

पञ्चगंगाघाट में पांच नदियां मिलती हैं। गंगा देख पड़ती है; बाकी, धूत, पापा इत्यादि चार, सुनते हैं, पृथ्वी के नीचे हैं! इससे वे देख नहीं पड़तीं।

हनुमानघाट भी काशी का एक प्रसिद्ध घाट है। त्रिलोचनघाट भी पाँच प्रसिद्ध घाटों में से है। इसके आगे राजघाट है और राजघाट के आगे वरुणासङ्गम। वरुणासङ्गम में वरुणा नदी गंगा में गिरती है।

मन्दिर

बनारस में सैकड़ों मन्दिर हैं। उनमें से दो चार प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिरों का ज़िक्र, बहुत थोड़े में, हम नीचे करते हैं।

विश्वनाथ या विश्वेश्वर। यह बनारस का सब से प्रसिद्ध मन्दिर है। पुराना मन्दिर औरङ्गजेब ने तोड़कर बरबाद कर दिया था। यह नया मन्दिर अहल्याबाई का बनावाया हुआ है। इसकी उँचाई ५१ फुट है। इसके ऊपरी हिस्से में ताम्रपत्र पिटा हुआ है। उसपर सोने का मुलम्मा या पत्र है। सुवर्ण खचित करने का काम महाराजा रण-जीतसिंह के प्रबन्ध से हुआ था। इसी के पास एक और मन्दिर महादेव का है। यहीं पर अन्नपूर्णा का भी मन्दिर है। यह बाजीराव पेशवा का बनवाया हुआ है। यह, पिछला मन्दिर भी, बहुत सुन्दर है। विश्वनाथ के मन्दिर के हाते में नन्देश्वर की एक विशाल मूर्ति है। यहीं कुछ दूर पर ज्ञानवापी नाम का प्रसिद्ध कुंवा है। सूर्य, ढुंढि-राजगणेश, गौरीशङ्कर और हनूमान् के भी मन्दिर यहीं पर हैं। कुछ दूर पर साक्षी विनायक नामक गणेश की मूर्ति है। आप काशी के यात्रियों को यात्रा के पूरे होने की गवाही या सारटीफ़िकेट देते हैं।

आदि विश्वेश्वर का मन्दिर ओरंगजेब की मसजिद के पास है। लोगों का कथन है कि यह मन्दिर सबसे अधिक पुराना है और विश्वे-

श्वर का आदि मन्दिर यही है। पर फूरर साहब कहते हैं कि शकल-सूरत से यह पुराना नहीं मालूम होता। विश्वेश्वर का पहला मन्दिर यहीं रहा होगा और मुसलमानों के द्वारा उसके तोड़े जाने पर हिन्दुओं ने वर्तमान मन्दिर बनाया होगा।

दुर्गा। यह मन्दिर असी-संगम के पास है। इसे रानीभवानी ने बनवाया था। मन्दिर पत्थर का है, बड़ा है और उसमें अच्छा काम किया हुआ है। इसका मध्यभाग बारह खम्भों के आधार पर स्थित है। यहां बन्दर बहुत रहते हैं। हर मंगलवार को यहां दर्शकों की भीड़ होती है।

भैरवनाथ टाउनहाल के पास हैं। इनके हाथ में दो ढाई हाथ का एक डण्डा है। इसलिए ये दण्डपाणि कहलाते हैं। रविवार और मंगल को यहां अधिक भीड़ रहती है। यही शहर के देवी-देवताओं और मनुष्यों के कोतवाल या मैजिस्ट्रेट हैं। इस मन्दिर को पूना के पेशवा बाजीराव ने, १८२५ ईसवी में, बनवाया था।

अमेठी का मन्दिर। यह मन्दिर मणिकर्णिका पर है। यह लाल पत्थर का है और बहुत अच्छा बना हुआ है। यह अमेठी के राजा का बनवाया हुआ है।

इनके सिवा गोपालमन्दिर, वृद्धकाल, केदारनाथ, कामेश्वर, सोमेश्वर, शुकेश्वर, तारकेश्वर, शीतला, संकटा, नवग्रह और शनैश्चर आदि के अनेक मन्दिर हैं। यहां नैपालियों का भी एक प्रसिद्ध मन्दिर है। इसकी बनावट कुछ कुछ चीन के मन्दिरों की सी है।

मसजिदें

बनारस में जैसे मन्दिरों की अधिकता है, वैसे ही मसजिदों की भी। वहां के निवासियों में कोई एक चौथाई मुसलमान हैं।

औरङ्गजेब की मसजिद गंगा के किनारे है। सुनते हैं, विश्वेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर पहले यहीं पर था। उसीको तोड़ कर उसके और दूसरे मन्दिरों के माल-मसाले से यह मसजिद तैयार की गई है। मसजिद की बनावट सादी है। उसके दो मीनार १४७ फुट ऊँचे हैं। उसको लोग माधवराव का धवरहरा भी कहते हैं। मीनारों के ऊपर से सारे शहर ही का नहीं, किन्तु और भी दूर दूर तक का दृश्य देख पड़ता है। यहां पर पहले बौद्ध लोगों का एक चैत्य था। जब वह हिन्दुओं के कब्जे में आया तब उन्होंने उसे अपने ढंग का बना लिया। मुसलमानों ने उसे तोड़ कर इस मसजिद में लगा दिया। इसकी इमारत में बौद्ध, हिन्दू और मुसलमान तीनों का तर्ज़ देख पड़ता है।

विश्वनाथ के पास की मसजिद भी औरङ्गजेब की खुदापरस्ती का चिन्ह है। अनेक मन्दिरों को तोड़ कर वह बनी है। उसके सामने बौद्धों या हिन्दुओं के मन्दिरों के खम्भों की एक कतार है। मसजिद की पश्चिमी दीवार में लगे हुए मन्दिरों के भग्न भाग अच्छी तरह पह-चाने जा सकते हैं।

ढाई कँगूरे की मसजिद इसी नाम के महल्ले में है। यह बड़ी खूबसूरत मसजिद है। इसमें लगे हुए चौकोन खम्भे, और कहीं

कहीं की जाली, बौद्ध लोगों के समय की है। जान पड़ता है, जहां से यहां सामग्री लाई गई थी वहां पहले बौद्धों का विहार था। बौद्धों के बाद हिन्दुओं ने उसे अपना मठ बनाया था। जब मुसल्मानों का प्रभुत्व हुआ तब उन्होंने उसे तोड़ ताड़ कर यह मसजिद तैयार की। इस मसजिद के दूसरे खण्ड में एक पत्थर के ऊपर खुदा हुआ ११९० ईसवी का एक लेख मिला है। उसमें बनारस और उसके आसपास के कई एक तालाब, मन्दिर और मठों के बनवाये जाने का जिक्र है।

चौखम्भा की मसजिद भी बनारस की प्रसिद्ध मसजिदों में से है। इसका सिर्फ कुछ ही हिस्सा मुसल्मानी ढंग का है। इसके प्रायः सारे खम्भे किसी बौद्ध इमारत से निकाल कर लगाये गये हैं।

दूसरी मशहूर इमारतें

मानमन्दिर। जयपुर के महाराज जयसिंह ने हिन्दुस्तान में पाँच वेध-शालायें—जयपुर, देहली, मथुरा, उज्जैन और बनारस में—बनवाई थीं। बनारस में जो वेध-शाला या यन्त्रशाला है उसीका नाम मान-मन्दिर है। उसमें जयसिंह के निर्माण किये हुए ज्योतिष विद्या सम्बन्धी दिगंश-यन्त्र, मितियन्त्र, चक्रयन्त्र और यन्त्र-राज आदि यन्त्र हैं। परलोक-वासी पण्डित बापूदेव शास्त्री ने इन यन्त्रों के विषय में एक पुस्तक लिखी है। बनारस में मानमन्दिर देखने की चीज है; परन्तु यन्त्रों का उपयोग समझाने वाला कोई साथ चाहिए। यन्त्र अच्छी हालत में नहीं हैं।

माधवदास का बाग शहर के पश्चिम तरफ़ है। उसके भीतर कई

मकान हैं; पर वे अब बुरी दशा में हैं। १७८१ ईसवी में वारन हेस्टिंग्ज़ इसी बाग़ में ठहरे थे और यहीं से चेतसिंह को क़ैद करने का हुक्म आपने दिया था। च्यरी साहब के घातक नव्वाब वज़ीर-अली को भी गवर्नमेंट ने यहीं रहने को जगह दी थी।

महाराज विजयनगरम् की कोठी और बाग़ भेलूपुरा में हैं। यह भी बनारस में देखने की जगह हैं। कोठी के ऊपर से औरङ्गज़ेब की मसजिद की तरफ़ गङ्गाजी का अच्छा दृश्य देख पड़ता है।

नदेश्वर की कोठी महाराजा बनारस के अधिकार में है। जनवरी १७९९ में बनारस के जज मैजिस्ट्रेट डेविस साहब इसीमें रहते थे। जब वज़ीर-अली के आदमियों ने (च्यरी साहब को मारने के बाद) उनपर हमला किया था तब डेविस साहब ने अपनी मेम और बच्चों को छत पर भेज दिया था। आप एक भाला लेकर ज़ीने पर खड़े हो गये और ऐसी बहादुरी से बाग़ियों का मुक़ाबला किया कि उन लोगों की हिम्मत डेविस साहब के पास तक जाने की न हुई। इतने में एक रिसाला आ गया और डेविस साहब मारे जाने से बच गये। वज़ीर-अली डेविस साहब की कोठी में आग लगाने जाता था; पर उसका इरादा पूरा न होने पाया।

रामनगर महाराजा बनारस की राजधानी है। रामनगर-घाट से गङ्गा पार करके रामनगर जाना पड़ता है। काशिराज का महल देखने के लिए अनुमति की जरूरत है। महल से एक मील के फ़ासले पर एक सुन्दर तालाव है। तालाब के पूर्व दुर्गाजी का एक मन्दिर है। उसपर रामायण और महाभारत के ऐतिहासिक चित्र खुदे हुए हैं।

टाउन हाल और प्रिंस आफ़ वेल्स का अस्पताल आदि भी बनारसकी मशहूर इमारतों में से हैं।

पुरानी इमारतें

बनारस के उत्तर तरफ़ बौद्धों के ज़माने की इमारतों के भग्नावशेष कहीं कहीं पर अब तक विद्यमान हैं। जो चैत्य या विहार कुछ अच्छी दशा में हैं वे भी अब अपने पुराने रूप में नहीं हैं। उनको कहीं हिन्दुओं ने अपने ढंग का बना लिया है, कहीं मुसल्मानों ने अपने ढंग का। मकानों और मसजिदों में कहीं बौद्ध इमारतों के खम्भे लगे हैं; कहीं कुछ, कहीं कुछ। पुरानी बनावट और कारीगरों के चिन्हों से ये चीजें पहचानी जाती हैं। किसी किसी पत्थर पर कारीगरों ने गुप्त राजों के समय के अक्षरों में अपने नाम या निशान बनाये थे। वे अब तक बने हुए हैं। उनको देख कर इन चीज़ों की प्राचीनता का प्रमाण मिलता है।

बकरियाकुण्ड। शहर के उत्तर-पश्चिम एक महल्ला है। उसका नाम है अलीपुरा। वहां बकरिया-कुण्ड नाम का एक तालाब है। उसके किनारे पुराने जमाने की इमारतों के बहुत से निशान हैं। वहां कई एक टीले हैं जिनसे जान पड़ता है कि वहां बौद्ध लोगों की इमारतें ज़रूर रही होंगी। कहीं टूटे फूटे खम्भे पड़े हैं; कहीं कलश पड़े हैं; कहीं मूर्तियों के भग्नावशेष पड़े हैं। कहीं कहीं पर दीवारें अब तक खड़ी हैं। छतें भी कहीं कहीं पर बनी हुई हैं। वहीं, कुछ दूर पर, एक मसजिद है। उसमें एक शिलालेख फ़ारसी में है। वह फ़ीरो-

जशाह के समय का है। ज़ियाअहमद ने उसे १६७५ ईसवी में बनवाया था। इस मसजिद का प्रायः सभी माल-मसाला हिन्दुओं और बौद्धों के मन्दिर तोड़ कर लाया गया है। यहांपर बौद्धों के एक चैत्य का भग्नावशेष अभी तक बना हुआ है। इस चैत्य से कोई दो सौ गज़ के फ़ासले पर एक बौद्ध-मन्दिर भी है। वह कुछ अच्छी हालत में है। उसमें ४२ खम्भे हैं। मुसलमानों ने कृपा कर के उस में कुछ जोड़ जाड़ कर उसका मक़बरा बना डाला है।

तिलियानाला और राजघाट के क़िले में भी बौद्धों के प्राचीन विहारों और चैत्यों के चिन्ह अभी तक बने हुए हैं।

लाटभैरव राजघाट के क़िले से कोई एक मील है। वहांपर एक बड़ा सा तालाब है। उसके किनारे एक लाट या खम्भा है। उसीको लोग लाट-भैरव कहते हैं। उस पर ताँबा मढ़ा हुआ है। ऊँचाई उसकी बहुत थोड़ी है। पर जिस पत्थर के खम्भे का यह टुकड़ा है वह कोई ४० फुट ऊंचा रहा होगा। पुरानी इमारतों के विषय में जानकारी रखने वालों का यही अनुमान है। मुसलमानों ने उसे तोड़ फोड़ कर छोटा कर दिया है। यह स्तम्भ पहले एक मन्दिर के प्राङ्गण में था। मन्दिर को औरङ्गज़ेब ने तुड़वा डाला और वहीं पर एक मसजिद बनवाई। यह स्तम्भ उस मसजिद के हाते में था। सम्भव है, यह अशोक का कीर्ति-स्तम्भ हो और इसपर उसके अनुशासन खुदे रहे हों।

सारनाथ में किसी समय बौद्धों का बड़ा दौरदौरा था। यह जगह बनारस से कोई तीन मील उत्तर है। उसके पास बंगाल-नार्थ-वेस्टर्न रेलवे (गोरखपुर लाइन) का स्टेशन भी है। बनारस में लोग इसे

धमेख कहते हैं। जनरल कनिंगहम के मत में सारनाथ नाम सारंगनाथ का अपभ्रंश है। सारंगनाथ का अर्थ "हिरनों का मालिक" अथवा बुद्ध भी हो सकता है और महादेव भी हो सकता है। कहते हैं, किसी समय, यहां पर मृगदाव नाम का जंगल था आर बुद्ध, अपने किसी पूर्व-जन्म में, हिरनों के राजा के रूप में, यहां घूमे फिरे थे। गया में बोधिसत्वता को प्राप्त होकर शाक्य मुनि ने इसी जगह, सब से पहले, बौद्ध मत प्रचलित करने का यत्न किया था।

चीन के बौद्ध परिव्राजक फाहियान (३९९ ईसवी में) और हुएनसङ्ग (६२९-६४५ ईसवी में), दोनों ने, सारनाथ का वर्णन किया है। पिछला इसके विषय में इस प्रकार लिखता है—"बनारस के उत्तर-पश्चिम अशोक का एक स्तूप है। वह १०० फुट ऊँचा है। वहां एक बहुत बड़ा संघाराम है। वह आठ हिस्सों में बँटा हुआ है। उसके चारों तरफ़ दीवार है। उसके भीतर दो-मंज़िले कई महल हैं और एक विहार भी २०० फुट ऊँचा है। स्तूप के चारों तरफ छोटी-छोटी १०० कोठरियों की एक लाइन है। हर कोठरी में एक एक मूर्ति बुद्ध की है। मूर्तियां सुवर्ण-खचित हैं। विहार के पास अशोक का बनवाया हुआ एक स्तूप है। उसके सामने ७० फुट ऊँचा एक स्तम्भ है। जहां स्तम्भ है वहीं बुद्ध ने पहले पहल धर्मोपदेश किया था। यहां पर तीन तालाब हैं। मठ से थोड़ी दूर पर एक और स्तूप है। वह ३०० फुट ऊँचा है। उसमें अनेक रत्न लगे हुए हैं।

इस समय सारनाथ में दो स्तूपों के अवशिष्ट अंश हैं। एक धमेख (धर्मोपदेशक ?) जो पत्थर का है, दूसरा चौखण्डी, जो ईंटों

का है। दोनों में कोई आध मील का अन्तर है। बीच की जगह टीले के आकार में खाली पड़ी है। उसमें ईंट, रोड़े, पत्थर और पुरानी मूर्तियों के टुकड़े इधर उधर पड़े हुए हैं। उसके पूर्व, नरोकर या सारङ्गताल नाम का एक बहुत बड़ा तालाब है। धमेख से दक्षिण-पश्चिम की तरफ़ जैनियों ने पार्श्वनाथ का एक मन्दिर बनवाया है।

धमेख को जिस समय जनरल कनिंगहम ने नापा था उस समय वह ११० फुट ऊँचा था। उसका घेरा, नीचे, ९३ फुट था। ४३ फुट की उँचाई तक यह स्तूप पत्थर का है; उसके ऊपर ईंट का। स्तूप के चारों तरफ़ जो मूर्तियों के रखने की जगह हैं वे सब खाली हैं। उनमें पूरे क़द की बुद्ध की मूर्तियां किसी समय रही होंगी। पत्थरों में फूल-पत्ती और मनुष्यों के चित्र कहीं कहीं पर, खुदे हुए अभी तक बने हैं।

१७९४ ईसवी में राजा चेतसिंह के दीवान जगतसिंह ने, धमेख से १४० गज़ के फासले पर, एक जगह खुदवाई। उससे जो ईंट-पत्थर निकला, वह जगतगञ्ज बनाने के काम में आया। जो जगह खोदी गई वहां पर, ज़मीन के भीतर, एक दालान निकली। उसमें, खोदने पर, दो बक्स निकले। एक पत्थर का था, दूसरा सङ्गमरमर का। उनमें मनुष्य की कुछ हड्डियां और कुछ गले हुए मोती और सोने के वर्क़ वगैरह मिले। बुद्ध की एक मूर्ति भी निकली। उस-पर १०८३ संवत् का एक लेख था। वह गौड़-नरेश महिपाल के समय का था।

चौखण्डी का दूसरा नाम लोरी की कुदान है। यह एक ऊँचा

टीला है। इसपर एक अठकोनी मण्डपी या मढ़ी है। उसके एक दरवाज़े पर फ़ारसी में एक लेख खुदा हुआ है। उसमें लिखा है कि हुमायूं बादशाह एक बार इस टीले पर चढ़ा था। उसी की यादगार में यह मण्डपी बनाई गई है। कनिंगहम साहब की राय में यहींपर वह स्तूप रहा होगा जिसकी उँचाई होएनसंग ने ३०० फुट बतलाई है।

सारनाथ के टीलों को खोदने पर जो चीज़ें पुराने ज़माने की मिली हैं वे साबित करती हैं कि किसी समय यहां पर बौद्धों का बहुत बड़ा संघाराम था। दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी में, जब बौद्ध यहां से निकाले गये, इन इमारतों में आग लगा दी गई थी। खाक, बाल, हड्डियां, छिपाई हुई मूर्तियां, खाने की चीज़ें, गड़े हुए बर्तन, इत्यादि जो यहां पर निकले हैं वे सिद्ध करते हैं कि अकस्मात् आग नहीं लगी; किन्तु किसी ने जान-बूझ कर सारनाथ की बस्ती को अच्छी तरह जलाया था।

सारनाथ एक बहुत ही प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान बनारस में है। गवर्नमेंट ने वहांपर एक जगह बनवा कर, जो जो चीजें वहां ज़मीन से निकली हैं, सब रखवा दी हैं। पहले यहांकी बहुत सी ऐतिहासिक चीज़ें कीन्स-कालेज के हाते में रक्खी थीं। शायद वे भी सब अब यहीं आ गई हैं। इससे दर्शक उन्हें यहीं देख सकते हैं। अभी, कुछ दिन हुए, वहां और भी बहुत सी चीज़ें ज़मीन से निकली हैं। स्तूपों की मरम्मत करने, उनको रक्षित रखने और नई नई जगहों पर खोद कर पुरानी चीज़ों को ढूंढ़ने का प्रबन्ध

अभी तक गवर्नमेंट की तरफ़ से जारी है। इस विषय में युक्तप्रान्त की गवर्नमेंट के अण्डर-सेक्रेटरी ने अपनी २८ अगस्त की चिट्ठी के साथ जो रिपोर्ट, मांगने पर, हमारे पास भेजी है उसकी नक़ल हम, नीचे, * पाद-टीका में देते हैं।

* Copy of report in connection with the excavation of ancient ruins at Sarnath near Benares.

Sarnath stone Stupa (Damekh)

The jungle round the Stupa has been cleared and the grounds levelled and unsightly ditches filled up. An estimate for repairing the stone portion of the Stupa is under preparation.

A new stone-shed called the "Museum" was also constructed on a design furnished by Mr. F. O. Oertel, Executive Engineer in purely Hindu style. The construction of the shed was commenced in the previous year and was completed during the year under review. The old Buddhist sculptures are now kept in this Museum.

Excavations of the ancient ruins at Sarnath were carried out under the instructions of Mr. Oertel. A number of Budhist stupas, a large Vihara, and traces of many Budhist shrines, were uncovered, together with a large unmber of sculptures of stone, terracotta, and plaster of great archaeological interest. The most interesting of these latter are (1) a magnificently well finished column; with an inscription which fixes it to the period of Asoka ;

कालेज, पाठशाला, छापेखाने आदि

क्वीन्स-कालेज बनारस का प्रसिद्ध कालेज है। इसकी इमारत देखने लायक है। १७९२ ईस्वी में यह जारी हुआ था। इसकी वर्तमान इमारत १८५३ ईसवी में, १,२५,००० रुपये की लागत से, बनी। पहले यह संस्कृत-कालेज कहलाता था। इसमें संस्कृत और अँगरेज़ी दोनों भाषाओं में ऊँचे दरजे तक की शिक्षा दी जाती है। इसका संस्कृत-विभाग अलग है। कालेज के हाते में ३१॥ फुट ऊँचा एक स्तम्भ है। उसपर एक लेख गुप्त-वंशीय राजों के समय के अक्षरों में है। इस कालेज के पुस्तकालय में अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ हैं; विशेष कर के पुरातत्व-विषयक।

हिन्दू-कालेज। बनारस में एक नया कालेज, एनी ब्यजंट के प्रयत्न से बना है। सुनते हैं, इसमें हिन्दुओं की पुरानी पद्धति के

(2) a huge umbrella, 10 feet in diameter, the inside of which is elaborately carved with serolls and symbols; (3) several colossal statues (4) a stone railing characteristic of the Budhist period; and (5) several sculptures with inscriptions.

All the important scluptures have been kept in the Museum.

Chaukhandi at Sarnath

In the brick stupa known as Chaukhandi, a well shaft was dug by Mr. Cunningham and left open. To avoid

अनुसार धर्म्म-शिक्षा भी दी जाती है। पर इसके कार्य-कर्ताओं में थियासफ़िस्ट ही अधिक हैं। कालेज का प्रबन्ध, लोग कहते हैं, अच्छा है। इसका एक बोर्डिंग हाउस भी है। काश्मीर-नरेश की संस्कृत-पाठशाला भी इसी कालेज में है। उसका भी प्रबन्ध इसी कालेज के अधिकारियों के हाथ में है।

इनके सिवा बनारस में और भी कई स्कूल हैं। बनारस संस्कृत का घर है। वहां संस्कृत की कई एक पाठशालायें हैं। बनारस के प्रसिद्ध पण्डित शिवकुमार-शास्त्री महाराजा-दरभंगा की पाठशाला में हैं।

बनारस में सिर्फ़ एक ही पुस्तकालय नाम लेने लायक़ है। वह ज्ञानवापी के पास है। उसका नाम है कारमाइकल लाइब्रेरी। उसमें पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

बनारस में कई छापेख़ाने हैं। उनमें से मेडिकल हाल प्रेस,

---

accidents, a stone railing was erected around this. A zigzag path was also made around the brick ruins, providing an easy way up to the brick stupa.

The ground near the stupa also contains traces of ancient ruins ; so it was considered desirable to acquire it. Moreover with a view to ascertain the nature of the foundation and superstructure of the ancient Buddhist ruins on which the brick stupa stands, some excavations were carried out, and plans of the traces of wells discovered made under instructions of Mr. Oertel.

तारा प्रेस, चन्द्रप्रभा प्रेस, यज्ञेश्वर प्रेस और भारतजीवन प्रेस मुख्य हैं। मेडिकल हाल प्रेस से पण्डित नामक संस्कृत की प्रसिद्ध सामयिक पुस्तक निकलती है। हिन्दू-कालेज की मैगेज़ीन तारा प्रेस में छपती है। मित्र-गोष्ठी-पत्रिका नामक संस्कृत-मासिक-पुस्तक यज्ञेश्वर प्रेस में छपती है। भारत-जीवन नामक हिन्दी का साप्ताहिक अख़बार अपने नाम के छापेख़ाने से निकलता है। कई एक उपन्यासमय मासिक-पत्र भी, हिन्दी में, बनारस से निकलते हैं। बनारस से "चौखम्भा-संस्कृत-सीरीज़" नामक एक सामयिक पुस्तक संस्कृत में निकलती है। उसमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ छपते हैं। इस प्रान्त में हिन्दी लिखने-पढ़ने की चर्चा सबसे अधिक बनारस में है। वहां-से प्रायः हर महीने हिन्दी की एक-आध नई पुस्तक निकलती है। पर इन पुस्तकों में से, बँगला के आधार पर लिखी गई, क़िस्से-कहानी की पुस्तकों ही की संख्या अधिक होती है।

नागरी-प्रचारिणी सभा

कोई १२ वर्ष हुए स्कूल के कुछ लड़कों ने मिलकर एक सभा बनाई और उसका नाम नागरी-प्रचारिणी रक्खा। नागरी अक्षर और हिन्दी भाषा दोनों का प्रचार करना इसका उद्देश है। पर इसके नाम से इसके दोनों उद्देश नहीं सूचित होते। इसने, इतने दिनों में, अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। पाँच छः सौ सभासद भी इसके हो गये हैं। इसने अपना एक अलग मकान भी बनवा लिया है। यह हिन्दी की पुरानी पुस्तकों की खोज करती है;

अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करती है; हिन्दी में व्याख्यान दिलवाती है; और अन्य भी बहुत सी बातें करती है। इस सभा का एक उसूल—सिद्धान्त—बिलकुल ही नया है। वह यह कि, दूसरों के विषय में यह जो कुछ कहती है, उसे यह समालोचना समझती है; पर इसके विषय में और कोई जो कुछ कहता है उसे यह अपवाद, या व्यर्थ निन्दा समझती है। उदाहरण—यदि सभा कहे कि हिन्दी-अख़बारों के सम्पादकों ने यूनीवरसिटी, अर्थात् विश्वविद्यालय, के बरामदे में क़दम नहीं रक्खा; अथवा उनमें सभा की खोज की रिपोर्ट पढ़ कर समझने की लियाक़त नहीं; अथवा उनकी दृष्टि संकीर्ण है, वे उपकारी उद्योगों का विरोध करते हैं; वे तुच्छ समाचारों पर लम्बे लम्बे लेख लिखते हैं,—तो यह कहना विशुद्ध समालोचना है। पर यदि अख़बारों के सम्पादक या और कोई कहे कि सभा हिन्दी-पुस्तकों की खोज का काम अच्छी तरह नहीं करती; अथवा जो बात वह कहती है उसपर स्थिर नहीं रहती; अथवा, किसी किसी काम के लिए वह एक की जगह दो आदमी व्यर्थ रखती है, तो वह विशुद्ध अपवाद, अर्थात् व्यर्थ निन्दा, है!

[दिसम्बर १९०५]



चरखारी-राज्य ।

बुँदेलखण्डमें चरखारी एक प्रसिद्ध राज्य है। उसकी राजधानी चरखारी-नगर हमीरपुर जिले के अन्तर्गत महोबा रेलवे स्टेशन से कोई ६ मील है। वह उत्तरी अक्षांश २४°४१′ और २५′ के बीच में है। चरखारी समुद्र की सतह से कोई ६३० फुट ऊँचाई पर है। शहर की लम्बाई २ मील और चौड़ाई उससे कुछ कम है। क्षेत्रफल साढ़े तीन वर्गमील के क़रीब है। राज्य का क्षेत्रफल ८८० वर्गमील है और गत मनुष्य-गणना के अनुसार आबादी १, २४, ००० है। इस हिसाब से प्रति वर्ग-मील में कोई १६५ आदमी बसते हैं। आमदनी ६ लाख रुपये सालाना है। यह रियासत कई परगनों में बँटी हुई है। रानीपुर-मेरा परगने में हीरे की खानें हैं।

बुँदेलखण्ड में दो तरह की रियासतें हैं—एक वे जिनको गवर्नमेंट ने सनदें दी हैं; दूसरी वे जिनके और गवर्नमेंट के दर्मियान सन्धि-पत्र लिखे गये हैं। चरखारी पहले प्रकार का राज्य है।

बहुत पुराने ज़माने में बुँदेलखण्ड गोण्ड-राजों के अधिकार में था। उनके बाद चँदेलों का राज्य हुआ। चँदेलों के अनन्तर बुँदेलों का आधिपत्य हुआ। चरखारी की रियासत में कहीं कहीं अब तक गोंड लोग रहते हैं। बेलखरा परगने में शायद अब भी गोंड राजा हैं; पर वे चरखारी के जागीरदार हैं। चरखारीके वर्त-मान नरेश महाराजाधिराज सिपहदारुलमुल्क सर मलखानसिंहजूदेव बहादुर, के० सी० आई० ई० महाराजा छत्रशाल के वंशज हैं।

चरखारी के पहले राजा का नाम खुमानसिंह था। १७६५ ईसवी के लगभग उन्होंने चरखारी के पास की एक पहाड़ी पर मङ्गलगढ़ नाम का एक क़िला बनवाया। यह पहाड़ी कोई ३०० फुट जमीन से ऊँची है। इस क़िले में कई तालाब हैं, उनमें विहारीसागर सब से अधिक प्रसिद्ध है। मन्दिर भी कई हैं। पहाड़ी पर क़िला बन जाने के बाद लोग उसके नीचे आकर बसने लगे। धीरे धीरे वहाँपर एक छोटा सा क़सबा बस गया और नाम उसका पड़ा मङ्गलनगर। यही वर्तमान चरखारी है। पुरानी चरखारी वहाँसे कुछ दूर है।

राजा खुमानसिंह के बाद चरखारी की गद्दी राजा विजयबहादुर-सिंह को मिली। उनका मुख्य नाम विक्रमादित्यसिंह था, पर सब लोग उन्हें विजयबहादुरसिंह ही कहते थे। चरखारी की प्रसिद्ध कोठी आप ही की बनवाई है। उसी के नीचे कोठी-ताल नाम का जो एक उत्तम सरोवर है वह भी आप ही के औदार्य्य का फल है। ये बड़े गुण-ग्राहक थे। कवि भी अच्छे थे। इनकी बनाई हुई कई पुस्तकें अब तक विद्यमान हैं। बुँदेला राजों में राजा विजयबहादुरसिंह ही पहले

राजा थे जो अँगरेजों को पहले पहल बुँदेलखण्ड में लाये और अँगरेज़ी गवर्नमेंट की अधीनता स्वीकार करके १८०४ और १८११ ईसवी में उससे सनदें प्राप्त कीं। उनके ७ पुत्र थे—४ औरस ३ अनौरस। पर दैवयोग से चार में से एक भी औरस पुत्र न रहा। इससे उन्होंने अपने पौत्र रत्नसिंह को गोद लिया। राजा रत्नसिंह, विजयबहादुरसिंह के अनौरस पुत्र के पुत्र थे। परन्तु उन्होंने इन्हीं को अपना उत्तराधिकारी चुना; औरस पौत्रों में से किसीको नहीं चुना। गवर्नमेंट ने भी इस बात को मंजूर कर लिया।

राजा रत्नसिंह के समय में सिपाही-विद्रोह हुआ। उसमें उन्होंने अँगरेजों का पक्ष लिया। उनकी सब तरह से मदद की। बाग़ियों ने चरखारी क़िले को घेर लिया और राजा रत्नसिंह से कहा कि महोबे के ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट कर्न (Kern) साहब को जिन्हें तुमने छिपा रखा है, फौरन हमारे हवाले कर दो। परन्तु राजा साहब ने उसी पथ का अनुसरण किया जिसका अनुसरण रणथंभोर के हम्मीर वीर ने किया था। उन्होंने बागियों की इस प्रार्थना को घृणा की दृष्टि से देखा। भला भारतवासी, फिर भी क्षत्रिय, शरणागत को अभयदान देकर कहीं उसे शत्रु के सिपुर्द करते हैं? रक्षा का वचन दिया सो दिया। क़िले पर अनवरत अग्निवर्षा होती रहने पर भी राजा साहब ने कर्न साहब को अपनी रक्षा में रक्खा। यही नहीं, उन्होंने एक ऐसा काम किया जिसकी समता संसारभर के इतिहासों में बहुत ही कम पाई जाती है। वे कर्न के बदले अपने प्राणोपम पुत्र जयसिंह को विद्रोहियों के हवाले करने पर राजी हो गये। उन्होंने कहा, हम अपनी

आत्मा दे डालेंगे—हम अपने आत्म-प्रतिबिम्ब से हाथ धो बैठेंगे—पर जब तक शरीर में प्राण हैं, शरणागत को दूर नहीं करेंगे। विद्रोह शान्त होने पर, ३ नवम्बर १८५९ को लार्ड केनिंग ने कानपुर में दरबार किया। प्रधान सेनापति लार्ड क्लाइड भी दरबार में पधारे। ग़दर के समय जिन लोगों ने अँगरेज़-राज की मदद की थी वे सब सादर बुलाये गये। दरबार में लार्ड केनिंग ने प्रधान सेनापति से राजा रत्नसिंह का परिचय कराते हुए जो वचन कहे वे चरखारी की कोठी के सामने सोने के अक्षरों में लिख रखने लायक़ हैं। उन्हें हम ज्यों का त्यों नीचे पादटीका * में उद्धृत करते हैं। अन्त में आपने कहा—

His Execllency enjoined all British officers who might hereafter enter the territory of the Maharaja to remember these services and to render to his Highness the respect and condsideration which he so eminently deserves.

* "My lord Clyde,—Allow me to introduce to you a staunch and loyal ally of ours ; who when the rebels that beleagured his fort demanded from him the British officer whom he had protected, returned for answer that he would deliver up his own son, but with his life defend his British guest" :—

From:—Bengal Harkara and Indian gazette of 11 th. November 1859, page 458.

अर्थात् भविष्यत् में जितने अँगरेज़-अफ़सर चरखारी की ज़मीन में क़दम रक्खें उन्हें महाराजा रत्नसिंह की इस उदारता और आत्मत्याग का स्मरण रखना चाहिए और उनका यथेष्ठ आदर और सम्मान करना चाहिए।

महाराजा की इस सहायता के उपलक्ष्य में गवर्नमेंट ने २० हज़ार रुपये की खि़लत दी। वंश-परम्परा के लिए ११ तोपों की सलामी का अधिकार दिया। फ़तेहपुर का परगना इनाम में मिला और दत्तक लेनेका अधिकार भी गवर्नमेंट से प्राप्त हुआ। रींवा और बनारस के राजों ने भी गदर में गवर्नमेंट की खै़रख़्वाही की थी। पर उनको जितने की खिलत मिली, चरखारी नरेश को उससे दूने की मिली। चरखारी में रतनसागर नाम का जो बड़ा तालाब है, वह महाराजा रत्नसिंह ही के नाम का स्मरण दिलाता है।

महाराजा रत्नसिंह की मृत्यु १८६० ईसवी में हुई। उनके बाद उनके पुत्र महाराजा जयसिंह को चरखारी का राजासन मिला। उनके समय में लिखने लायक़ कोई विशेष बात नहीं हुई। १८८० ईसवी तक वे जीवित रहे। उनके मरणान्तर उनकी विधवा महारानी ने वर्तमान चरखारी-नरेश महाराजा मलखानसिंहजू देव को गोद लिया। उस समय आप की उम्र कोई आठ नौ वर्ष की थी। आप का जन्म १३ नवम्बर १८७० ईसवी का है। इस समय आपकी उम्र कोई ३७ वर्ष की है।

जब तक महाराजा साहब वयस्क नहीं हुए, राज्य का काम-काज आप के पिता राव जुझारसिंहजू देव बहादुर चलाते रहे। महाराजा

की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध किया गया। इंडिया-कौंसिल के मेम्बर थिओडर मारिसन साहब की निगरानी में आपने विद्याध्ययन किया। अंगरेज़ी में आपने यथेष्ठ प्रतिपत्ति प्राप्त की। राजाओं को जिन विषयों की राजोचित शिक्षा मिलनी चाहिए, वह आपको अच्छी तरह मिली। वयस्क होने पर आपको, १८६२ में, राजासन प्राप्त हुआ। उसके दो वर्ष बाद आपको गवर्नमेंट से सनद मिली और फौजदारी के पूरे अधिकार भी दिये गये। अब आपको अपने राज्य में फांसी तक देने का अधिकार है। चरखारी-नरेश "सिपहदारुलमुल्क" कहलाते आये हैं। १८७७ ईसवी में गवर्नमेंट ने भी इस पदवी का प्रयोग किया जाना स्वीकार किया। वर्तमान महाराजा साहब भी इस पदवी के भोक्ता हैं। गवर्नमेंट अपने क़ागज़-पत्रों में इस पदवी का बराबर प्रयोग करती है।

महाराजा चरखारी राज्य-प्रबन्ध में यथेष्ठ कुशल हैं। राजा का जो धर्म है उसे आप अच्छी तरह पालन करते हैं। जहां निग्रह की ज़रूरत होती है वहां दया दिखाना आप राजनीति के खिलाफ़ समझते हैं और जहां प्रसाद की जरूरत होती है वहां आप अपनी गुणग्राहकता और प्रजावात्सल्य का प्रमाण दिये बिना नहीं रहते। क्योंकि प्रजारञ्जन ही राजा का सब से बड़ा कर्तव्य है। जो राजा कोप और अनुग्रह को यथा समय और यथा स्थान प्रकट करने में सङ्कोच नहीं करते उन्हीं को यथार्थ राजा कहना चाहिए। आपने अपने राज्य में अनेक सुधार किये हैं, जिनके उपलक्ष्य में गवर्नमेंट ने आप को के०सी० आई० ई० की उच्च पदवी से विभूषित किया है। महाराजा बहादुर को

पहली महारानी नहीं रहीं। इससे आप को दुबारा दारपरिग्रह करना पड़ा। दोनों रानियों से आपको चार सन्तानों का लाभ हुआ। पर दुःख की बात है, उनमें से एक भी जीवित नहीं। वर्तमान महारानी के राजकुमार ४ वर्ष के हो कर जाते रहे। अब—

आशास्यमन्यत्पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुऽषस्ते।
पुत्रं लभस्वात्मगुणा नुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव॥

कवि कुल चक्रवर्ती कालिदास के शब्दों में हमारी परमेश्वर से यही प्रार्थना है।

महाराजा साहब अपनी प्रजा को शिक्षा दान देने के बड़े ही पक्षपाती हैं। चरखारी में एक हाईस्कूल है, जिसके कारण आपकी राजधानी में शिक्षा खूब सुलभ हो रही है। स्त्री-शिक्षा की तरफ़ भी आपका पूरा ध्यान है। उसका भी आपने अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। चरखारी में इतनी लड़कियाँ पढ़ती हैं जितनी शायद ही बुंदेलखण्ड की अन्यान्य रियासतों में कहीं पढ़ती हों। चरखारी की एक स्त्री ने तो स्त्री-धर्म्म विषयक एक पुस्तक तक लिख डाली है। वह प्रकाशित भी हो गई है। महाराजा बहादुर ने अपनी राजधानी में कलाकौशल सिखलाने के लिए एक "स्कूल आव् आर्ट्स" भी खोल रक्खा है। यह स्कूल बहुत अच्छी दशा में है। यहाँ अनेक प्रकार के सूती, रेशमी और ऊनी कपड़े तैयार होते हैं। यहाँ के कालीन बहुत अच्छे होते हैं। महाराजा साहब ने देहात में भी शिक्षा-प्रचार का अच्छा प्रबन्ध किया है। इससे सिद्ध है कि आप शिक्षा और कला-कौशल की उन्नति और प्रचार के कितने पक्षपाती हैं।

महाराजा साहब को देशाटन और तीर्थयात्रा का भी शौक है। जब आपकी उम्र केवल १४ वर्ष की थी तभी एक दफ़े आप कलकत्ते गये थे। राह में आपने वैद्यनाथ, गया, काशी, विन्ध्याचल और प्रयाग की यात्रा की। उस साल लार्ड कर्ज़न के देहली-दरबार में भी आप पधारे थे। और भी आपने कई बार देशाटन और यात्रायें की हैं।

धार्मिक विषयों में भी महाराजा की बड़ी रुचि है। आप नित्य सायङ्काल विहारीजी के मन्दिर में देव-दर्शन करने जाते हैं। इसमें कभी त्रुटि नहीं होती। मन्दिर में आप बड़े ही भक्ति भाव से देव-दर्शन करते हैं। कुछ समय हुआ, हम अपने एक मित्र से मिलने चरखारी गये। उस समय वहाँ विधिपूर्वक रामलीला हो रही थी। महाराजा साहब खुद ही लीला-प्रबन्ध कराते हैं और बड़े प्रेम से उसमें योग देते हैं। आपको कविता से भी शौक है। आपने अनेक पद लिखे हैं और यदा कदा लिखा ही करते हैं। आपके कितने ही पद लीलाओं और कीर्तनों में गाये जाते हैं।

१८८३ ईसवी से चरखारी में, दिवाली के दिनों में गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णजी के उपलक्ष्य में गोवर्द्धन-मेला होता है। यह मेला बहुत प्रसिद्ध है। दूर दूर से लोग यहाँ आते हैं। सैकड़ों कोस से बड़े बड़े दूकानदार यहाँ अपनी दूकानें लाते हैं। हजारों साधु और महात्मा भी आते हैं। कितने ही देवताओं को विमानों में सज्जित करके लाते हैं; महाराजा साहब का गोवर्द्धन-मन्दिर बड़ी ही मनोहरता से सजाया जाता है। मेले का प्रबन्ध बहुत उत्तम होता है। सारा शहर

चरखारी छोड़कर मेले के स्थान में जा रहता है। यह स्थान चरखारी से मिला हुआ है। स्वयं महाराजा साहब मेले में जाकर अपने खेमे लगवाते हैं और वहीं रहते हैं। यह मेला कोई एक महीना रहता है। जङ्गल में मङ्गल हो जाता है। इस मेले में इतनी चौकसी रक्खी जाती है कि आज तक कभी किसी की एक सुई तक नहीं गई। जो लोग बाहर से मेले में जाते हैं उनका महाराजा साहब की तरफ़ से यथेष्ट आतिथ्य किया जाता है। सुनते हैं, महाराजा साहब के पिता, राव बहादुर जुझारसिंह जू-देव, सी० आई० ई०, दीवान बहादुर, ने पहले पहल इस मेले की नीव डाली थी।

महाराजा साहब के पिता बड़े ही योग्य दीवान हैं। आपका जन्म १८८४ ईसवी का है। राजनीति में आप इतने प्रवीण हैं कि बुँदेलखण्ड भर में शायद ही और कोई इस विषय में आपकी बराबरी कर सकता हो। आप के पुत्ररत्न, वर्तमान महाराजा चरखारी, जबतक नाबालिग़ थे, आप दरबार के सीनियर मेम्बर थे। राज्य का सूत्र आप ही के हाथ में था। आपने सब काम इस योग्यता से चलाया कि गवर्नमेंट ने खुश होकर आपको दीवान बहादुर की पदवी दी। यह बात १८८७ की है। इसके आठ वर्ष बाद, अर्थात् १८९५ में, आपको सी० आई० ई० का ख़िताब मिला। गद्दी मिलने पर—सारे राजाधिकार प्राप्त होने पर—महाराज साहब ने राव साहब को अपना मदारुलमुहाम अर्थात् प्रधान दीवान बनाया। इसी पद पर आप तब से अधिष्ठित हैं और राज्य में उपयोगी सुधार करने और प्रजा को सुखी रखने के लिये हमेशा यत्नवान रहते हैं।

चरखारी में महाराजा साहब के फ़ीलखाने में एक हाथी बहुत ही स्थूलकाय है। उसका पेट प्रायः ज़मीन को छूता है। इतना मोटा हाथी हमने और कहीं नहीं देखा। देहली दरबार में सैकड़ों हाथी गये थे। यह भी गया था लोग इसे बड़े चाव से देखते थे।

चरखारी से लगी हुई एक नई बस्ती है। राव साहब ही के प्रबन्ध से वह आबाद हुई है। वहां बाज़ार लगता है और गल्ले वग़ैरह का बड़ा व्यापार होता है। वहां एक बहुत अच्छे तालाब के सामने विहारीजी का एक आलीशान मन्दिर है। महाराजा साहब प्रतिदिन शाम को वहां देव-दर्शन करने जाते हैं। हमारे मित्र पण्डित युगलकिशोर वाजपेयी हमें भी एक दिन दर्शन कराने ले गये। वहाँ राव बहादुर दीवान जुझारसिंहजूदेव पहले ही से उपस्थित थे। मन्दिर में कीर्तन हो रहा था, राव साहब ही के बनाये हुए पद गाये जा रहे थे। इस भक्ति-भाव से, इस प्रेम-प्रवणता से, इस ताल-स्वर से कीर्तन हो रहा था कि हमारी सारी इन्द्रियां कर्णेन्द्रिय में इकट्ठी हो गईं और हम सहसा भक्ति रसार्णव में निमग्न हो गये। कुछ देर बाद महाराजा साहब पधारे और दर्शन, प्रदक्षिणा आदि करके चले गये। अन्त में दस बारह लड़के, मन्दिर के नीचे सीढ़ियों के पास, ठाकुरजी के सम्मुख एक कतार में खड़े हो गये। उन्होंने बड़े ही मीठे स्वर में "जगन्नाथ स्वामी नयनपथगामी भवतु मे"—गाना आरम्भ किया। उसे सुनकर, सच मानिए, हमें आत्मविस्मृति-सी हो गई। शरीर में रोमञ्च और आँखों में अश्रु-सञ्चार हो आया। भक्ति के उन्मेष में उस दिन हमें जितना आनन्द

आया उसका वर्णन हमसे नहीं हो सकता। हमने कितने ही मन्दिरों में झाकियां देखीं और कितने ही कीर्तन सुने, परन्तु भक्ति-भाव का जैसा उद्रेक वहां हमारे अन्तःकरण में हुआ वैसा और कहीं नहीं हुआ था। मनुष्य कैसा ही नास्तिक क्यों न हो--नास्तिक क्या चाहे वह मूर्तिमान् चार्वाक ही क्यों न हो—ऐसा भक्ति-भाव और कोमल कीर्तन सुनकर उसका भी हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। जिन लड़कों ने पूर्वोक्त संस्कृत-पद्य गाया था उन्हें उसकी यथा-रीति शिक्षा दी गई थी। यही लड़के महाराजा साहब की रामलीला में शरीक होते थे और अपने पात्र-गत क्रिया-कलापों से दर्शकों और श्रोताओं को मनोमुग्ध करते थे।

चरखारी बहुत ही रमणीक स्थान है। वहां की आबोहवा तन्दुरुस्ती के लिए बहुत लाभदायक है। शहर छोटा, परन्तु खूब साफ सुथरा है। बड़े बड़े कई एक तालाब हैं। सब पक्के बँधे हुए हैं। उनमें कमल बहुत होता है। खिले हुए अनन्त कमल-पुष्पों से तालाबों का अधिकांश जल बिलकुल ढक जाता है। कमलों की ऋतु में इन तालाबों का दृश्य बहुत ही भला मालूम होता है। चर-खारी के चारों तरफ छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं। शहर उनके बीच में बसा हुआ है। उन्हीं में से एक पहाड़ी के ऊपर चरखारी का प्रसिद्ध किला है।

महाराजा के महलों के बाद देखने लायक इमारत चरखारी की कोठी है। यह कोठी तालाब के ठीक किनारे बनी हुई है। तालाब का पानी कोठी की दीवारों से टकराया करता है। इस कोठी

को अतिथिशाला कहना चाहिए। ऐजंट गवर्नर जनरल और पोलिटिकल एजंट आदि बड़े बड़े लोग यहीं ठहराये जाते हैं। कोठी खूब सजी हुई है; उसकी छत से शहर का दृश्य बहुत अच्छी तरह दिखाई देता है। बरसात में जब सब पहाड़ियाँ हरित वर्ण हो जाती हैं तब इस कोठो के ऊपर से उनकी तरफ़ देखने से आँखों को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

चरखारी से मिला हुआ एक उपवन है। उसमें शिकार खेलने की सख्त मुमानियत है। उसमें सैकड़ों हिरन निःशङ्क, निडर और निश्चिन्त घूमा करते हैं। बड़े बड़े सींगोंवाले किसी किसी कृष्णसार मृग का रूप, रङ्ग और विशाल आकार देखकर कौतुक मालूम होता है। उपवन के बीच से एक सड़क गई है। उस में भी हिरनों के झुण्ड के झुण्ड बैठे हुए पागुर किया करते हैं। सड़क से आने जाने वाले आदमियों की वे बहुत ही कम परवा करते हैं। आप बन्दूक ताने चले जाइए—नङ्गी तलवार चमकाने में कसर न कीजिए वे आप की तरफ़ देखेंगे भी नहीं। महाराजा साहब के अभय वचन के विश्वास पर, आने जाने वालों के बाहुबल को—उनके शस्त्रास्त्र को—वे तुच्छ समझते हैं, घृणा की दृष्टि से देखते हैं, बड़ी बड़ी आँखें दिखा कर उनका उपहास सा करते हैं। इस उपवन के बीच में एक छोटा सा मकान है। उसमें, समय समय पर, बाजा बजता है, जिसे बड़े बड़े हरिण-नायक अपने बन्धु-बान्धवों समेत बड़े चाव से सुना करते हैं।

इस उपवन को देखकर हमें कालिदास द्वारा अभिज्ञान शाकुन्तल

में वर्णन किये गये तपोवन का तत्काल स्मरण हो आया। वहाँ कण्व के आश्रम के समीप हरिणों को लक्ष्य कर के महाराज दुष्यन्त का बाण सन्धान करते देख, आश्रम के तपस्वियों ने कैसे कोमल वचनों से राजा को रोका है:—

न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्—
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः ।।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चाति लोलं ।
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते ।।

परन्तु यहाँ इस उपवन में हरिणों को लक्ष्य बनाना तो दूर रहा, कन्धे पर रक्खी हुई बन्दूक भी शायद उन्हें देखने को न मिलती हो। इसीसे यहां के हिरन इतने निडर हो गये हैं कि प्रायः शहर के भीतर तक चले आते हैं और स्वछन्द घूमा करते हैं।

[अप्रेल १९०८]



औरङ्गाबाद, दौलताबाद और रौज़ा

ग्रेट इंडियन पेनिन्शुला रेलवे के मन्माड़ स्टेशन से जो रेलवे लाइन हैदराबाद को गई है उसी पर औरङ्गाबाद है। मन्माड़ से वह कोई ७० मील है। किसी समय दक्षिण में औरङ्गाबाद की वैसी ही प्रसिद्धि थी जैसी इस तरफ़ देहली की थी। वह देहली का स्थानवर्त्ती था। औरंगज़ेब ने अपने शासन का पिछला भाग दक्षिण ही में व्यतीत किया। उस समय औरङ्गाबाद उसकी राजधानी था। निज़ामशाही बादशाहों के आखिरी बादशाह के परम प्रतापशाली सचिव-सेनापति मलिक अम्बर ने, १६१० ईसवी में इस नगर की नींव डाली थी। इसका पहला नाम खिरकी था, परन्तु जबसे औरङ्गजेब वहां पधारे तब से वह औरङ्गाबाद हुआ। यह इस समय निज़ाम के राज्य में है। इसकी आबादी १०,००० के लगभग है।

औरङ्गज़ेब के समय के बने हुए शाही महल, मसजिदें और मकानात, इस नगर में, सैकड़ों वर्ष बेमरम्मत पड़े रहने के कारण बहुत कुछ उज़ाड़ हो गये थे, यहां तक कि उनके आस पास प्रचण्ड जङ्गल हो गया था और भालू, भेड़िये और गीदड़ोंने उनको अपना घर बना लिया था। कुछ समय हुआ, सर सालारजङ्ग ने इस जङ्गल को कटाकर शाही इमारतों को साफ़ करा दिया। साफ़ कराने पर उसमें अनेक जलाशय, फौवारे और महल निकले। उनमें से प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानों की मरम्मत भी करा दी गई। तब से जो लोग यलोरा की गुफायें देखने जाते हैं वे इसे भी अवश्य देखते हैं; क्योंकि वहां से यह सिर्फ ८ मील है। इस समय, इस नगर में, औरङ्गज़ेब के क़िले का केवल एक ही फाटक शेष रह गया है; परन्तु यह उस क़िले का द्वार है जिसके भीतर बादशाही दरबार में हिन्दुस्तान के ५० से भी अधिक राजे महाराजे हाज़िर रहते थे। औरङ्गज़ेब के जीवनकाल में औरङ्गाबाद ने अपूर्व वैभव का उपभोग किया; परन्तु उसके मरते ही उसके उत्तराधिकारियों ने उसका एकबारगी ही परित्याग कर दिया। अतएव उसका अल्पकालिक वैभव सहसा नष्टप्राय हो गया। औरङ्गाबाद में जो क़िला था उसका नाम "किला एराक" था। उसके भीतर औरङ्गज़ेब की जामे मसजिद अभी तक विद्यमान है। उसको लोग आलमगीरी मसजिद भी कहते हैं। उसको मलिक अम्बर ने आरम्भ किया; परन्तु वह उसे पूरा नहीं कर सका। औरंगज़ेब ने उसकी समाप्ति की। यह मसजिद यद्यपि छोटी है तथापि बहुत ही सुन्दर बनी हुई है और अबतक अच्छी दशा में है। इसके दरवाज़े पर जो काम है वह बड़ा ही मन-

मोहक है। इसपर तार की पतली जाली लगी हुई है। इसलिए पक्षी अथवा और कोई जीव इसके भीतर नहीं जा सकते। इस कारण यह बहुत साफ़ रहती है।

इस नगर में औरङ्गज़ेब की लड़की ज़ेबुन्निसा का महल भी देखने लायक़ है। वह उन्हीं इमारतोंमें से है जिनके चारों ओर घोर जङ्गल उग आया था। इसके सिवा कई पुरानी बारादरियां, दीवानखाने और शाही मकान हैं, जो अपने पूर्व वैभव का कुछ कुछ अनुमान देखने वाले के मन में उत्पन्न करते हैं।

औरङ्गज़ेब की बेगम रबिअब्दुर्रानी का यहां बहुत ही अच्छा मक़बरा है। उसकी उपमा आगरे के ताज-महल से दी जाती है। उसके फाटक के किवाड़ों पर पीतल का पत्र जड़ा हुआ है और उसपर नक्काशी का काम है। वहांपर यह एक लेख है—"इस दरवाज़े को १०८९ हिज़री में, हैबतराय ने प्रधान कारीगर अनाउल्ला से बनवाया।" समाधि-स्थान सङ्गमरमर के एक ऊँचे चबूतरे पर है। उसके चारों ओर सङ्गमरमर की जाली है। उसका काम बहुत ही मनोहर है। यह जाली समाधि को चारों ओर से घेरे हुए है। निज़ाम की गवर्नमेंट ने अनन्त धन खर्च कर के इस रौज़े की मरम्मत कराई है। मरम्मत क्या, उसे बिलकुल नया कर दिया है। इसके फाटक की छत पर जो काम है उसे देख कर बुद्धि नहीं काम करती ; वह अपूर्व है।

औरंगाबाद में वहां की पनचक्की भी दर्शनीय है। एक सुन्दर बाग़ में विमल जल से भरा हुआ एक तालाब है। इस तालाब में मछलियों की अतिशय अधिकता है। एक फट से लेकर तीन फुट तक की

मछलियां उसमें खेला करती हैं। इस तालाब का पानी एक दूसरे तालब में गिरता है। यह तालाब पहले की अपेक्षा छोटा है। इसका भी पानी एक छोटी सी नहर में गिरता है। यद्यपि इसका नाम पनचक्की है और यह एक प्रपात है, तथापि इसमें भी बाबा शाह मुसाफिर चिश्ती की क़ब है। ये औरंगजेब के धर्म्मोपदेशक थे। पहले तालाब और बाग़ के आगे एक और तालाब है। यह पहले से भी बड़ा है। इसमें यह विलक्षणता है कि यह धरातल पर नहीं, किन्तु आकाश में लटका हुआ है। अत्यन्त दृढ़ और प्रकण्ड खम्भों के ऊपर धन्वाकार मेह-राबों पर पक्का जलगृह बना हुआ है; उसीमें अनन्त सलिल-समूह भरा है!

औरंगाबाद के पास एक पहाड़ी है, वह कोई ५०० फुट ऊंची है। २५० फुट की उंचाई पर उसमें यलोरा की जैसी ५ गुफायें हैं। परन्तु ये वैसी अच्छी और वैसी प्रसिद्ध नहीं जैसी यलोरा की गुफायें हैं। इनमें से दूसरे नम्बर की गुफा बौद्धों का चैत्य है; और तीसरे तथा चौथे नम्बर की गुफ़ायें विहार हैं। इनमें बुध, पद्मपाणि और वज्रपाणि आदि बोधि-सत्वों की अनेक मूर्त्तियां हैं। बुध की एक प्रतिमा ८१२ फुट ऊंची है!

औरंगाबाद से दौलताबाद ८ मील है। वहां पर भी रेलवे स्टेशन है। उसका प्राचीन नाम देवगिरि है। वहां का क़िला समुद्र के धरातल से ५०० फुट ऊंची चट्टान पर बना हुआ है। वह तेरहवें शतक में बना था। क़िले की चारों ओर ऊंची दीवार है, उसमें निशान लगाने के लिये छेद हैं, और तोपें रखने के लिए यथा-स्थान बुर्ज बने हुए हैं।

नीचे खाई है। खाई के आगे और चार दीवारें बहुत दृढ़ बनी हैं। उनको पार करने पर खाई तक पहुंचने की नौबत आती है। इसके फाटकों पर भाले के समान लोहे की नोकदार कीलें गड़ी हुई हैं। इनके कारण बड़े से बड़े मत्त गजेन्द्र भी उनपर आघात करके उन्हें तोड़ नहीं सकते। इसके भीतर एक मीनार है। इस मीनार को मुसलमानों का विजय-स्तम्भ समझना चाहिए। १४३५ ईसवी में पहले पहल जब उन्होंने देवगिरि को हिन्दुओं से जीता तब यह मीनार बनाया। यह बात यहां के एक फ़ारसी शिलालेख से सूचित है। यहां पर एक बुर्ज में अरब के रहने वाले महम्मद हसन नाम के कारीगर की बनाई हुई "क़िले शिकन" नामक विशाल तोप रखी है। यह कोई २२ फुट लम्बी है। इसके मुंह का व्यास ८ इञ्च है। इस क़िले में एक इससे भी भारी तोप है। उस पर जो लेख खुदा है उसमें इसका नाम "प्रलयङ्करी" लिखा है। औरंगजेब ने एक योरोपियन के द्वारा इसे सबसे ऊंची बुर्ज पर चढ़ाया था। वह वहां किसी प्रकार न उठाई जा सकती थी। इसलिए औरंगजेब ने उस योरोपियन को अपने देश जाने से रोक दिया; और कह दिया कि जबतक वह उसे बुर्ज पर न चढ़ा देगा उसे छुट्टी न मिलेगी और वह हिन्दुस्तान से बाहर क़दम न रख सकेगा। अन्त में इस धमकी से उत्तेजित होकर, उसने, किसी प्रकार, उसे बुर्ज पर चढ़ा ही दिया। इस क़िले में एक बड़ी विचित्र बात है। इसमें एक जगह ऊपर १ इञ्च मोटी और २० फुट लम्बी लोहे की चदर जड़ी हुई है। युद्ध के समय वह तपाकर आग के समान लाल कर दी जाती थी। शत्रु यदि किले के भीतर पहुंच भी जाय तो वहां

से आगे वह किसी प्रकार न बढ़ सके। बढ़ने से उसे वहीं झुलस जाना पड़े।

क़िले के भीतर प्राचीन हिन्दू राजाओं के महलों के खंडहर दूर तक देखे जाते हैं। दो एक मन्दिर भी उजाड़ दशा में पड़े हैं। प्राचीन नगर का अस्तित्व बिलकुल ही जाता रहा है। उसकी जगह पर, इस समय, एक छोटा-सा गांव है। १२६३ ईसवी में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर कब्जा किया; परन्तु क़िले को वह न ले सका। बहुत दिनों तक वह क़िले को घेरे पड़ा रहा। कहते हैं, १८७ मन सोना ७ मन के करीब मोती, २५ सेर हीरा और कोई ३०० मन चाँदी लेकर उसने क़िले का घेरा उठाया! १३३८ ईसवी में मुहम्मद तुग़लक़ ने देवगिरि का नाम दौलताबाद रक्खा; और देहली उजाड़ कर उसे आबाद करना चाहा। इस पागलपनमें उसे कहां तक सफलता हुई, यह विदित ही है।

रौज़ा का दूसरा नाम है खुल्दाबाद। यह, इस समय, एक छोटा सा क़सबा है। समुद्र के धरातल से २,००० फुट की ऊंचाई पर यह बसा हुआ है। औरंगाबाद से यह ८ मील और यलोरा की गुफाओं से कुल २ मील है। यहाँ बहुत से मकबरे हैं; इसी लिए इसका नाम रौज़ा है। दक्षिण के मुसलमानों का यह करबला है। जिनकी क़बरें यहाँ हैं उनमें से औरंगज़ेब, उसका दूसरा पुत्र आज़िमशाह, हैदराबाद के राजवंश का प्रतिष्ठापक आसफ़जाह, उसका पुत्र नासिरजङ्ग, मलिक अम्बर; थानाशाह आदि मुख्य हैं।

औरंगज़ेब की क़ब्र बहुत सादी है। उसकी प्रसिद्धि उसके सादेपन ही के कारण है। वह खुली हुई है। धूप और वर्षा से रक्षा का कुछ

भी प्रबन्ध नहीं है। उसके आस पास बकुल के वृक्ष हैं; उन्हींकी थोड़ी बहुत छाया उसे मिलती है। क़ब्र की दोनों ओर ५ फुट ऊंची संगमरमर की मनोहर जाली है; उससे इस रौजे में कुछ थोड़ी-सी शोभा आ गई है। सुनते हैं, औरंगजेब ने कह रक्खा था कि उसकी समाधि में किसी प्रकार का आडम्बर न किया जाय। कुरान की आज्ञा के अनुसार वह बिलकुल सादी बने। जो अपने सगे भाइयों की हत्या से ज़रा नहीं सकुचा; जिसने अपनी निरपराध हिन्दू प्रजा पर घोर जुल्म किया; जिसने अपनी स्त्री को समाधि औरंगाबाद में ऐसी अच्छी बनावाई; कुरान के वचनों पर विश्वास करके उसीका अपने लिये आडम्बर विहोन क़ब्र बनवाने की आज्ञा देना आश्चर्य्य की बात है। औरंगज़ेब ने कह रक्खा था कि उसके मरने पर, उसकी बनाई हुई टोपियों की बिक्री से जो कुछ मिले, उतना ही खर्च किया जाय। ये टोपियाँ कोई सात आठ रुपये को बिकीं। औरंगज़ेब की लिखी हुई कुरान की प्रतियों को बेंचने पर, सब मिलाकर, ८०५ रुपये मिले। यह रुपया गरीबों को बांट दिया गया था।

औरंगज़ेब की क़ब्र के कुछ ही दूर आगे उसके लड़के आज़िमशाह की क़ब्र है। उसीके पास आज़िमशाह की बेगम की भी है। यहीं पर सैयद जैनुद्दीन की भी क़ब्र है। वह औरों की अपेक्षा अच्छी है। इन सैयद साहब की मृत्यु १३७० ईसवी में हुई। इसके किवाड़ों पर चाँदी की चद्दर जड़ी हुई है और सीढ़ियों में रंगबिरंगे पत्थर लगे हुए हैं। इसीके पास एक छोटे से कमरे में कुछ कपड़े हैं, जिनको लोग मुहम्मद साहब के बतलाते हैं। साल में केवल एक बार उनके दर्शन मुसलमान-

यात्रियों को मिलते हैं। जैनुद्दीन साहब की मसजिद भी, रौज़े में, देखने की चीज़ है।

औरंगज़ेब और आज़मशाह के मक़बरे के सामने आसफ़जाह और उसकी बेगम की क़ब्रें हैं। परन्तु इन दोनों से अधिक प्रसिद्ध और दर्शनीय ख़्वाजा बुरहानुद्दीन अवलिया की क़ब्र है। १३४४ ईसवी में उनकी मृत्यु यहांपर हुई। १४०० चेलों को लेकर उत्तरी हिन्दुस्तान से ये दक्षिण में मुसलमानी मज़हब फैलाने के लिए आये थे। यहां हज़रत महम्मद साहब की डाढ़ी के कुछ बाल हैं। सुनते हैं वे हर साल बढ़ते हैं! परन्तु इससे भी अधिक विलक्षण एक और बात वहां के धर्म्मरक्षक यात्रियों को बतलाते हैं। वे कहते हैं कि इस रौज़े के तैयार हो जाने पर इसके और अपने ख़र्च के लिए ख़्वाजा साहब के चेलों को बहुत कष्ट होने लगा इसलिए उन्होंने धन के लिए ख़्वाज़ा साहब से प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना कबूल हुई, और हर रोज रौज़े के फ़र्श से चाँदी का एक पेड़ निकलने लगा। वह रोज उखाड़ लिया जाता था और उसकी चांदी बेंच दी जाती थी। इससे इतना रुपया इकट्ठा हो गया कि थोड़े ही दिनों में एक जागीर मोल लेली गई और ख़र्च की तंगी जाती रही। तबसे पेड़ उगना बन्द हो गया; परन्तु चाँदी के फूल कुछ दिन तक फिर भी निकलते रहे। इसके प्रमाण में गच पर, एक जगह, चाँदी के कुछ टुकड़े चिपके हुए दर्शकों को दिखालाये जाते हैं!

(मई १९०४)

—:※:—

चिदम्बर

चिदम्बर मदरास से १९१ मील है। वह एक छोटा सा कसबा है। उसकी आबादी कुल २०,००० है। परन्तु उसमें हिन्दुओंके दो एक बहुत प्राचीन मन्दिर हैं, इसीलिए उसका बड़ा महात्म्य है। जो लोग रामेश्वर के दर्शन को जाते हैं वे चिदम्बर और कुम्भ कोण के प्रसिद्ध मन्दिरों को देखे बिना नहीं लौटते।

फ़रगुसन साहब का मत है कि चिदम्बर के मन्दिर दक्षिणी हिन्दुस्तान में बहुत पुराने हैं। उनका कोई कोई भाग इतना सुन्दर और इतना मनमोहक है कि उसमें कलाकौशल की चरम सीमा पाई जाती है। पुरातत्व के जानने वाले कहते हैं कि प्राचीन चोल-राज्य की सीमा दक्षिण की तरफ़ चिदम्बर तक थी। इस राज्य की समय समय पर कई राजधानियाँ नियत हुई थीं। इसकी पहली राजधानी कावेरी नदी के तट पर ऊरीउर में थी; फिर कुम्भकोण में हुई और अन्त में तञ्जापुर अर्थात् तञ्जोर में।

चिदम्बर में सबसे बड़ा और सबसे प्रसिद्ध मन्दिर महादेव का है। विद्वानों का कथन है कि उसे राजा हिरण्यवर्ण चक्रवर्ती ने बनवाया था। यह राजा श्वेतकुष्ट से पीड़ित था, इसी लिए लोग उसे श्वेतवर्मा कह कर पुकारते थे। वह एक बार देवदर्शन के लिए दक्षिण की ओर गया। यात्रा करते करते जब वह चिदम्बर में पहुंचा और वहाँ के तालाब में उसने स्नान किया तब उसका कुष्ट नहाने के साथ ही नाश हो गया। अतएव उसने वहीं पर विशाल शिव-मन्दिर निर्माण कराया। किसी किसीका मत है कि राजा हिरण्यवर्ण ने इस मन्दिर को बनवाया नहीं; किन्तु कुष्ट से छुटकारा पाने पर उसने केवल उसकी मरम्मत कराकर उसके आकार-प्रकार को विशेष भव्य कर दिया।

परन्तु इस मन्दिर के विषय में एक दूसरे मार्ग से एक दूसरे ही प्रकार की बात विदित हुई है। मेकञ्जी नाम के एक साहब ने दक्षिण में प्रचलित पुस्तकें बहुत खोज से एकत्र की हैं। उनमें से एक हाथ की लिखी हुई पुस्तक से सूचित होता है कि ९२७ से ९७७ ईसवी के बीच चोल देश में वीर नाम का एक राजा हुआ। उसने एक बार समुद्र के किनारे शङ्कर को पार्वती के साथ ताण्डव-नृत्य करते देखा। इस उपलक्ष्य में कनक-सभा के नाम का यह सुवर्ण मन्दिर उसने बनवाया और उसमें जो शिव की मूर्ति स्थापित की उसका नाम उसने नटेश्वर रक्खा। चाहे जिसने, चाहे जब, और चाहे जिस निमित्त इस मन्दिर को बनवाया हो, यह दर्शनीय अवश्य है। इसी-लिए दूर दूर से लोग वहां दर्शनों के लिए आते हैं।

इस मन्दिर के चारों ओर ऊँची ऊँची दो दीवारें हैं। मन्दिर का

कुल क्षेत्रफल ३२ एकड़ है। बाहरी दीवार उत्तर-दक्षिण १८०० फुट लम्बी और पूर्व-पश्चिम १४८० फुट लम्बी है। इस ३२ एकड़ भूमि के बीचमें एक बहुत ही सुन्दर तालाब है। वह ३१५ फुट लम्बा और १८० फुट चौड़ा है। उसके चारों किनारों पर चार बड़े बड़े गोपुर हैं। जो गोपुर उत्तर और दक्षिण की ओर हैं लगभग १६० फुटके ऊपर आकाश में चले गये हैं।

तालाब के पास एक बहुत विस्तृत दीवानखाना है। वह ३४० फुट लम्बा और १९० फुट चौड़ा है। पहले उसमें १००० खम्मे थे। परन्तु फ़रगुसन साहब के गिनने पर वे ९८४ ही निकले। शायद १६ खम्मे गिर गये हैं। यह एक आश्चर्यकारक स्थान है। क्योंकि १००० खम्मे के नाम से प्रसिद्ध होने वाले जितने स्थान इस देश में हैं, उनमें से एक में भी इतने खम्मे नहीं पाये जाते जितने चिदम्बर में हैं।

यहीं पर पार्वती का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के अग्रभाग में बहुत बड़ी कारीगरी की गई है। उसे देखकर चित्त को अलौकिक आनन्द होता है।

पार्वती के मन्दिर से मिला हुआ एक और मन्दिर है। वह सुब्रह्मण्य के नाम से प्रसिद्ध है। उसके घेरे का परिमाण २५०×३०५ फुट है। मन्दिर के सामने एक मोर और दो हाथियों की विशाल मूर्तियां हैं। उनके आगे एक बरांडा है। उसमें खम्भे हैं। उनपर जो काम है वह वर्णन से बाहर है। फ़रगुसन साहब का मत है कि यह मन्दिर ईसा की सतरहवीं शताब्दी का है। इस मन्दिर के घेरे के

एक कोने में गणेश का एक मन्दिर है। सुब्रह्मण्य मन्दिर के हाते में कई छोटे छोटे मण्डप हैं। उनमें भिन्न भिन्न देवताओं की मूर्तियां स्थापित हैं।

शङ्कर का प्रधान मन्दिर तालाब से ३० गज़ दक्षिण की ओर है। पार्वती का मन्दिर दक्षिण-पश्चिम की ओर है। शङ्कर की मूर्ति दिगम्बर है। वह चतुर्भुजी है। भुजायें ऊपर को उठी हैं। दाहना पैर पृथ्वी पर रक्खा है; और बायां एक तरफ़ ऊपर को उठा है। मन्दिर की छत सुनहले गिलट किये हुए ताँबे की चादर से मढ़ी हुई है। फ़रगुसन साहब कहते हैं कि यहां पर हिन्दुस्तान की एक बहुत ही प्राचीन और बहुत ही सुन्दर कारीगरी का नमूना है। वह एक छोटा-सा मण्डप है जिसके अग्रभाग को ६ फुट ऊँचे दो खम्भे थामे हैं। इस मण्डप में कई मूर्तियां नृत्य करती हुई दीख पड़ती हैं। वे इतनी भव्य और ऐसी सुघर हैं कि दक्षिणी हिन्दुस्तान में उनसे अधिक सुडौल और कोई मूर्त्ति नहीं देखी गई। इस मण्डप के दोनों तरफ़ रथों के चित्र हैं। उनके पहिये और घोड़े चित्रित करने में ऐसी कुशलता दिखलाई गई है कि उनका रङ्ग कहीं कहीं फीका पड़ जाने पर भी उनकी मनोहरता कम नहीं हुई है।

१७६० ईसवी में अँगरेजों ने पहले पहल इस मन्दिर को अपने अधिकार में किया। परन्तु १७८१ ईसवी में ३००० आदमी लेकर हैदरअली ने उसे घेर लिया। अँगरेजों की सेना के नायक सर आयर कूट थे। उनको मन्दिर छोड़कर भागना पड़ा। भागने में उनकी एक तोप भी हैदरअली के हाथ आई। श्री रङ्गपत्तन विजय होने तक

यह मन्दिर हैदरअली और टीपू ही के आधीन रहा ; परन्तु उस समय से इसका प्रभुत्व फिर अँगरेजों को प्राप्त हुआ। चिदम्बर दक्षिणी आरकट का एक "सब-डिवीज़न" है और अँगरेजी राज्य के अन्तर्गत है।

(नवम्बर १९०४)



मलाबार।

मलाबार का पुराना नाम केरल देश है। केर नारियल को कहते हैं। नारियल इस देश में बहुत होता है। इसी लिये इसका नाम केरल पड़ा। इस समय जितना भूभाग मलाबार के अन्तर्गत है, केरल कहने से उससे अधिक का बोध होता है; क्योंकि और भी दो एक ज़िलों की गिनती केरल ही में है।

मलाबार मदरास हाते का एक ज़िला है। वह १०-१५ और २०-१८ उत्तर-अक्षांश और ७५-१४ और ७६-५२ पूर्व-देशांश के बीच में है। उसके उत्तर में दक्षिणी कनारा; दक्षिण में कोचीन और ट्रावनकोर के राज्य; पूर्व में कुर्ग और नीलगिरि पर्वत; और पश्चिम में अरब का समुद्र है। उसका क्षेत्रफल ५,७६५ वर्ग मील और आबादी २५,००,००० है। बोली वहां की मलायम या मलयाली है। रहने वाले वहां के मलाबारी या मलयाली कहलाते हैं। प्राचीन मलय-

पर्वत इसी ज़िले के अन्तर्गत है। यहां चन्दन बहुत होता है। मल-याली शब्द मलयाचल या मलयाचली का अपभ्रंश जान पड़ता है।

मलावार के दो भाग हैं; उत्तरी मलाबार और दक्षिणी मलाबार। उत्तरी का सदर स्थान टेलिचरी है और दक्षिणी का कालीकट। पर ज़िले का सबसे बड़ा अधिकारी कालीकट ही में रहता है। वह मैजि-स्ट्रेट भी है; कलेक्टर भी है; और पोलिटिकल एजेंट भी है। कालीकट और टेलिचरी के सिवा पाल घाट, कनानूर, वेपुर और वड़-गरा भी मलावार के मशहूर शहर हैं। पर इन सब में कालीकट ही सबसे बड़ा है। वह बन्दरगाह भी है। वहां फौज भी रहती है और बन्दरगाह का एक अफ़सर भी रहता है। कालीकट जाने के दो मार्ग हैं। एक थल की राह से, दूसरा जल की राह से। थल की राह से जाने में कालीकट तक बराबर रेल मिलती है। जल की राह जाने से बम्बई में जहाज़ पर सवार होना पड़ता है और रत्नगिरी, कारवार, मॅंगलोर, कनानूर और टेलीचरी होते हुए कालीकट जाना पड़ता है।

मलावार पहाड़ी देश है; पहाड़ी ही नहीं, जङ्गली भी है। समुद्र के किनारे किनारे पश्चिमी घाट-पर्वत, ३००० से लेकर ७००० फुट ऊँचा, बराबर चला गया है। वह बहुत ही निविड़ जङ्गल से व्याप्त है, जिसमें शेर, भालू, भेड़िये, हाथी और हिरन भरे पड़े हैं। इन जङ्गलों के भीतर, दूर दूर तक, समुद्र की खाड़ियों का जल भरा रहता है। मैदानों में भी जल की बहुत अधिकता है। कोटा, माही और पूर्णा इत्यादि नदियां भी इसी ज़िले को अपने पानी से तर किया करती हैं। पानी, जंगल और पहाड़ों से प्रायः कोई भी कोना इसका

नहीं बचा। यह प्रदेश हमेशः हरा बना रहता है; और नारियल, इलायची, सुपारी और केले के स्वाभाविक और अस्वाभाविक घने घने घनों और उपवनों से अपनी नैसर्गिक शोभा को सदैव बढ़ाया करता है। यहां के मलयानिल से दूर दूर तक का देश सौरभमय हो जाता है। इस प्रदेश ने संस्कृत-कवियों को काव्य-रचना के लिए इतना मसाला दिया है कि शायद ही कोई ऐसा कवि हुआ होगा जिसने मलय और मलयानिल पर दो चार श्लोक न कहे हों। इसी मलयानिल-मण्डित देश के राजा के साथ, मलयस्थली में विहार करने की सिफ़ारिश इन्दुमती से कालिदास, इस प्रकार, करते हैं —

ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु ।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु ।।

मलाबार का मुख्य नगर कालीकट है। वह बहुत बड़ा शहर है। उसके दक्षिण-पूर्वी भाग में मोपला मुसलमानों की बस्ती है; उत्तर-पश्चिमाञ्चल में पोर्चुगीज लोग रहते हैं। जेल, ज़िले की कचहरियों और रोमन कैथलिक गिरजाघर भी उधर ही हैं। इस भाग में एक बहुत बड़ा तालाब है। मलायालियों की वस्ती अलग है। जेल के पास क्रिस्तानों का समाधि स्थान है। वहां पर मलाबार के कलेक्टर और मजिस्ट्रेट कानली साहब गड़े हुए हैं। १८५५ ई० में मोपला लोगों ने आपका खून कर डाला था। कानली साहब की अदालत में इन लोगों का एक मुकदमा चला। पर जिस पक्षवालों की हार हुई उन्होंने न्याय-कारी साहब ही को भाले से छेद डाला। कानली साहब की हत्या होने पर देशी फौज मंगाई गई मगर मोपालों ने उसे भी मार भगाया। तब

गोरों की पल्टन आई ; उसने इन लोगों को परास्त किया। कालीकट के जिस महल्ले में मोपला लोग रहते हैं उसका नाम मालापुरम् और जिसमें हिन्दू रहते हैं उस का नीलमपुर है। कालीकटमें सफ़ाई बहुत रहती है। वहां के मकान, उनके बरान्डे, और नारियल तथा अनेक प्रकार के लता पत्रादिक से वेष्टित स्वच्छ वाटिकायें देख कर तबीयत खुश हो जाती है। गरीब से गरीब आदमियों के मकान भी मैले नहीं रहते।

यह वही कालीकट है जहां से किसी समय सैकड़ों तरह की छींटें विलायत को जाती थीं। जो कपड़ा कालीकट से जाता था उसका नाम, यूरोप वालों ने, कालीकट के नामानुनार "कैलीको" रक्खा था। यह "कैलीको" शब्द अब तक प्रचलित है। ११ मई १४९८ ईस्वी को सब से पहले यूरोप के पोर्चुगीज प्रवासी वास्कोडिगामा ने कालीकट के किनारे पैर रक्खा। उस समय यह नगर दक्षिण भारत की अमरावती था। वहां सैकड़ों ऊँचे ऊँचे मकान और मन्दिरों के शिखर आकाश में बादलों से बातें करते थे। १५०९ ईस्वी में पोर्चुगीजों के सेना नायक डान फरनन्डो केटिन्हो ने ३००० सिपाही ले कर कालीकट पर हमला किया ; परन्तु वह खुद मारा गया और उसकी फौज जो कटनेसे बची भाग खड़ी हुई। १५१० में पोर्चुगल वालों ने इस नगर पर फिर धावा किया और इस बार इसे लूट लिया। परन्तु पीछे से उनको भागना पड़ा और बहुत कुछ नुकसान भी उठाना पड़ा। १५१३ में कालीकट के जमोरिन राजा ने पोर्चुगीज़ों से सन्धि कर ली और उन को क़िला बन्दी कर के एक कोठी खोलने की अनुमति भी देदी।

१६१३ में अंगरेजों ने भी अपनी कोठी यहां खोली। टीपू ने कालीकट को कई बार जीता और उसका विध्वंस। नगर को उसने जला दिया। अनेक स्त्रियों की गर्दन पर उनके बच्चों को बांध कर, दोनों को एक साथ हो, फांसी देदी और शेष को हाथियों के पैरों से कुचला दिया! परन्तु पीछे से टीपू के सेनापति को ९०० आदमियों के साथ अङ्गरेजों ने कैद कर लिया और १७९२ ईस्वी में मलाबार सदा के लिए अंगरेजी झण्डे की छाया में आगया।

शङ्कराचार्य की जन्मभूमि कालडी गांव भी मलाबार ही में है। वह पूर्णा नदी के किनारे है। इस नदी का पानी इतना स्वच्छ, मधुर और रोगहारक है कि शायद ही और किसी नदी, तालाब या कुंवें का होगा। दूर दूर के आदमी इसका जल पीने के लिए ले जाया करते हैं। इस नदी के किनारे सैकड़ों गांव हैं। इन गांवों के निवासी इस नदी में अकसर सुबह से शाम तक गोते लगाया करते हैं। भावुक ब्राह्मण दिन भर इसके तट पर बैठे हुए सन्ध्या बन्दन और पूजापाठ में निमग्न रहा करते हैं। मालाबारी लोग, स्त्रियों और बच्चों समेत, त्रिकाल स्नान करते हैं। मलाबार की अबो हवा गरम होने के कारण स्नानाधिक्य से उनको कोई कष्ट नहीं होता। यहां की नदियों और तलाबों में मिट्टी का सर्वदा अभाव रहता है। इस कारण, बार बार नहाने से, इन लोगों के कपड़े मैले नहीं होते।

मालाबार का जो भाग अधिक पार्वतीय है वह नारियल के निबिड़ जंगलों से भरा हुआ है। समुद्र के किनारे किनारे सिवा नारियल के ऊँचे ऊँचे वृक्षों के और कुछ नज़र नहीं आता। नारियल का वहां

सब से अधिक व्यापार होता है। उसका तेल निकाला जाता है ; उस की जटाओं की चटाइयां और रस्से रस्सियां बनती हैं ; और उसके पत्तों से पंखे और छाते बनते हैं। जो भाग कम पार्वतीय है उसमें चावल बहुत होता हैं, सुपारी, इलायची, जायफल, जायवित्री और लौंग भी वहां खूब होती है। क़हवा भी बहुत होता है।

मलाबार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक प्रभुत्व है। प्रायः घर की स्वामिनी वही होती हैं। उन के पति उन के घर आते हैं वे पति के घर नहीं जातीं। वहां पर मातृवंश स्थावर-जंगम सम्पत्ति का वारिस माना जाता है ; पितृवंश नहीं माना जाता। अथवा यों कहिए कि लड़का अपनी मां का कहलाता है, बाप का नहीं।

मलाबारी स्त्री पुरुषों में कोई कोई बातें बहुत ही विलक्षण हैं। यहां के नंबूरी ब्राह्मणों में सिर्फ सब से बड़े लड़के का विवाह होता है। उसी की सन्तति वारिस मानी जाती है। इन ब्राह्मणों में स्त्रियां बहुत वर्षों तक बेब्याही रहती हैं। कभी चालीस चालीस पचास पचास वर्ष की बूढ़ी बूढ़ी कुमारिकाओं का व्याह होता है ! कोई कोई बेब्याही बूढ़ी हो कर मर जाती हैं। नायर जाति की शूद्र-स्त्रियों के साथ कभी कभी और वर्ण वाले भी विवाह कर लेते हैं। पर इन लोगों के पति नाम के लिए पति होते हैं ; अपनी स्त्रियों पर उन का बहुत कम अधिकार रहता है। बहन और बहन की सन्तति ही का स्वामित्व सारी सम्पत्ति पर रहता है। मलाबारियों की एक सम्प्रदाय थियार नाम से प्रसिद्ध है। इन लोगों के भी रीति-रवाज नाम्बूरियों के जैसे होते हैं

(मार्च १९०५)

पटना ।

पटना या पाटलीपुत्र भारत का बहुत प्राचीन नगर है। यद्यपि यह नगर उतना पुराना नहीं जितनी देहली, तो भी यह देहली की तरह कई दफ़े उजड़ा और कई दफ़े बसा है। इसमें भी कई राजवंशों की जड़ें जमीं और जम कर उखड़ गईं, और कितने ही राजप्रासाद ऊँचे उठकर भूमि सम हो गये। पटना अब वह पुराना पाटलीपुत्र नहीं तथापि अब भी पुरातत्व-वेत्ता लोग उसकी भूमि के नीचे दबे हुए प्राचीन खँडहरों में उसके प्राचीन वैभव को ढूंढ़ते फिरते हैं।

सन् ईसवी से कोई पाँच सौ वर्ष पूर्व मगधदेश के राजा अजातशत्रु ने मिथिला-प्रान्त के तत्कालीन राजा को परास्त किया और विजित शत्रु की शक्ति पर सदा दृष्टि रखने के लिए गङ्गा के किनारे बसे हुए पाटली नामके एक छोटे से गाँव में एक क़िला बनाया। अजातशत्रु के पौत्र ने इसी किले के नीचे एक नगर बसाया जो कुसु-

मपुर, पुष्पपुर और पाटलीपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही नगर बढ़ता बढ़ता मगध साम्राज्य की राजधानी हुआ।

सम्राट्-चन्द्रगुप्त मौर्य्य ने पाटलीपुत्र को अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाया। उसी के समय में यूनानी राजदूत मेगास्थनीज भारत में आया। वह कई वर्ष पाटलीपुत्र में रहा। पाटलीपुत्र के विषय में उसने जो कुछ लिखा है उससे विदित होता है कि पाटली-पुत्र उस समय सोन और गङ्गा के सङ्गम पर बसा हुआ था। वह कोई साढ़े चार कोस लम्बा और पौन कोस चौड़ा था। उसकी चहार-दीवारी लकड़ी की थी, जिसमें ६४ फाटक और ५७० बुर्जे थीं। चहारदीवारी की चारों ओर एक गहरी और चौड़ी खाई थी, जिसमें सोन-नदी का जल भरा रहता था। राजमहल लकड़ी का बना हुआ था। वह अन्य देशों के राज-प्रासादों से कहीं बढ़ कर सुन्दर था। उसके स्तम्भों पर सुनहली चित्रकारी थी। राजमहल के चारों ओर बड़ा भारी बाग़ था, जिसमें नाना प्रकारके सुन्दर सुन्दर वृक्ष थे। उसमें कई जलाशय भी थे, जिनमें मछलियाँ क्रीड़ा किया करती थीं। नगर के प्रबन्ध का भार एक राज-सभा के ऊपर निहित था, जो सम्राट् की ओर से नियत थी। इस राजसभा के तीस सदस्य थे, जिन्हें पाँच पाँच के दल में विभक्त कर के छः स्वतन्त्र उपसभायें बनी थीं। यही उपसभायें नगर के भिन्न भिन्न विभागों का कार्य्य देखती थीं। पहली उपसभा नगर की शिल्पकला की रक्षा करती थी। दूसरी का यह काम था कि वह नगर में आये हुए विदेशियों को किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। तीसरी इस बात का हिसाब रखती

थी कि नगर में आज कितने आदमी मरे और कितने उत्पन्न हुए, जिससे कर वसूल करने में सुभीता रहे। चौथी नगर के व्यवसायियों से कर वसूल करती थी। पांचवी और छठी उपसभाओं का सम्बन्ध भी नगर के वाणिज्य-व्यवसाय ही से था। ये सभायें नगर के बाज़ारों, मन्दिरों और अन्य संस्थाओं का भी काम देखती थीं। उस समय भा भारत में कई अच्छी अच्छी सड़कें थीं। राजधानी पाटलीपुत्र से एक सड़क आरम्भ होती थी, जो एक हज़ार मील से अधिक लम्बी थी और भारत की पश्चिमोतर सीमा तक जाती थी।

चन्द्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक के समय में भी पाटलीपुत्र की बड़ी उन्नति हुई। मौर्य्य-वंश का अन्तिम राजा बृहद्रथ था। उसका सेनापति पुष्यमित्र उसे मार कर स्वयं राजा बन बैठा। पाटलीपुत्र पुष्यमित्र और उसके स्थापित किये हुए सुङ्ग नाम के राजवंश के दस राजों की राजधानी रहा। इस वंश का उत्तराधिकारी कण्व-वंश हुआ। उसकी भी राजधानी पाटलीपुत्र ही रहा। सन ईसवी से कुछ वर्ष पूर्व ही कण्व-वंश का अन्त हो गया और साथ ही पाटलीपुत्र का वैभव भी क्षीणप्राय हो गया।

कण्व-वंश के पश्चात् दक्षिण के आन्ध्र-वंश ने उन्नति पाई; परन्तु उसकी सत्ता कुछ ही समयके उपरान्त नष्ट हो गई। सन ईसवी की पहली शताब्दी के बीच से लेकर चौथी शताब्दी के आरम्भ तक भारत में अराजकता-सी फैली रही। उस समय देशभर में कई छोटे छोटे राज्यों का उदय हुआ। उनमें सदा परस्पर लड़ाई-झगड़ा होता रहा। विदेश से शक, हूण आदि कितनी ही यवन-

जातियां आ आकर यहां बस गईं। चौथी शताब्दीके आरम्भ में गुप्त-वंश का उदय हुआ। ३२६ ईस्वी में समुद्रगुप्त राजा हुआ। अपने बाहुबल से समुद्रगुप्त ने एक बार फिर भारतीय साम्राज्य की नींव डाली। उसका साम्राज्य हुगली से चम्बल तक और हिमालय से नर्म्मदा तक फैला। आसाम और हिमालय की तराई तक के नरेशों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। गुप्त वंश के इस अभ्युत्थान के साथ पाटलीपुत्र के गुप्त भाग्य ने भी पलटा खाया। उसे फिर एक बार एक विशाल साम्राज्य की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

छठी शताब्दी के अन्त में गुप्तवंश का भी नाश हो गया। मध्य एशिया के श्वेत हूणों का वह शिकार हो गया। पाटलीपुत्र का पतन भी तभी से आरम्भ हो गया। पाँचवी शताब्दी के आरम्भ में फाहियान नाम का एक चीनी यात्री भारत में आया था। उस समय पाटलीपुत्र मगध-प्रदेश की राजधानी था। वह पाटलीपुत्र में कोई तीन वर्ष रहा। महाराज अशोक के बनवाये हुए छः सात सौ वर्ष के पुराने टूटे फूटे राजमहल को देखकर फाहियान को बड़ा दुःख हुआ। इस विषय में उसने अपने यात्रा-वृत्तान्त में लिखा है कि अशोक ने इस महल को देवताओं से अवश्य बनवाया होगा। इसकी ऊँची ऊँची दीवारें, भव्य द्वार और चौखटें बनाना मनुष्य का काम नहीं। राजमहल के पास ही दो बौद्ध संघाराम थे, जिनमें छः सात सौ साधु रहते थे। ये साधु अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। दूर दूर से लोग अपनी धर्म-पिपासा की तृप्ति के लिए इनके पास आते थे। प्रसिद्ध

ब्राह्मण विद्वान् मञ्जुश्री भी इन्हीं दो बौद्ध संघारामों में से एक में रहा करता था। उस समय पाटलीपुत्र में कितने ही ऐसे औषधालय थे, जहां बिना जाति अथवा जन्म देश के विचार के सब प्रकार के रोगियों की मुफ्त चिकित्सा होती थी ! रोगियों के आराम का बड़ा ख़याल रक्खा जाता था। उनको सुपच्च भोजन मिलने की भी उचित व्यवस्था थी।

सातवीं शताब्दी के मध्य में दूसरा चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत में आया। उसने पाटलीपुत्र को बड़ी बुरी दशा में पाया। केवल नगर की टूटी फूटी चहारदीवारी मात्र उस समय उसके भूतपूर्व महत्व की चिन्ह-स्वरूप शेष रह गई थी। कुछ आवादी भी थी। चिरकाल तक पाटलीपुत्र को इसी अवस्था में पड़ा रहना पड़ा। लगभग एक हज़ार वर्ष के बाद, १५४० ईसवी में, पाटलीपुत्र के भाग्य ने फिर पलटा खाया। शेरशाह ने बादशाह हुमायूं को परास्त करके सूरवंश की नींव डाली। पाटलीपुत्र, जो अब पटना कहलाता था, सूरवंश की राजधानी बना। परन्तु अधिक समय तक श्री सम्पन्न न रह सका। थोड़े ही वर्ष बाद हुमायूं के बेटे अकबर ने सूरवंश का उच्छेद करके पटना का राजधानीत्व भी नष्ट कर दिया।

इसके बाद पटना में दो उल्लेखनीय घटनायें और हुईं। पहली घटना है, १७६३ ईसवी में, लगभग ६० अंगरेजों की हत्या। मीर क़ासिम उस समय बंगाल का नवाब था। उससे और ईस्ट इण्डिया कम्पनी से, चुंगी के लेन देन के विषय में, कुछ झगड़ा हो गया। बात यहां तक बढ़ी कि नवाब और कम्पनी में लड़ाई ठन गई। कम्पनी की

सेना ने पटना पर अधिकार कर लिया ; परन्तु नवाब ने पुनः पटना छीन लिया। अन्य नगरों की भी छीना झपटी हुई, जिससे कितने ही अंगरेज मीरक़ासिम के हाथ पड़ गये। ये अंगरेज पटना में क़ैद किये गये। इसी बीच में मीरक़ासिम को कम्पनी से दो बड़े बड़े युद्धों में हारना पड़ा। वह इस हार से चिढ़ गया। और क्रोध में आकर उसने सब अंगरेज क़ैदियों को मार डालने का हुक्म दे दिया। बाल्टर रेन्हार्ट नाम का एक स्वीटजरलैंड-निवासी मीरक़ासिम का नौकर था। इसी मनुष्य ने मीरक़ासिम की आज्ञा से बड़ी निर्दयता के साथ लगभग ६० अंगरेजों की हत्या की।

१८५७ में दूसरी घटना हुई। पटना-नगर से लगी हुई दानापुर की छावनी है। दानापुर में उस समय तीन देशी फ़ौजें थीं। १८५७ में सिपाही-विद्रोह हुआ। इस डरसे कि कहीं दानापुर की देसी फौजें विप्लव-कारियों से न मिल जायँ ; अँगरेज़-अफ़सरों ने यह निश्चय किया कि उनसे हथियार छीन लिये जायँ। फौजसे हथियार माँगने की बात चलने पर वह बिगड़ गई और अन्य विप्लव-कारियोंसे मिल गई। इसका परिणाम बुरा हुआ।

बहुत दिनों बाद, इस वर्ष, फिर पटना के भाग्य ने करवट बदली है। सम्राट् पञ्चम चार्ज की आज्ञा से बङ्गाल से अलग होकर बिहार एक स्वतन्त्र प्रान्त बना है और उड़ीसा तथा छोटा नागपुर भी उसीमें ज़ोड़ दिये गये हैं। पटना अब इस नये प्रान्त की राजधानी है।

वर्तमान पटना एक बड़ा लम्बा चौड़ा नगर है। बांकीपुर के मिला देने से इसकी लम्बाई लगभग चार कोस के हो जाती है। यह नगर

नील और अफ़ीम के व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र है। यहां से चीन को अफ़ीम भेजी जाती है। पर अब चीन वाले अफ़ीम खाना-पीना छोड़ रहे है। इससे यहां का कारोबार अब बन्द होने पर है। यहां साधारण इमारतें तो कितनी हीं हैं परन्तु एक देखने लायक़ है। उसे गोला कहते हैं। १७८३ में ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी के कर्मचारियों ने अनाज भरने के लिए इसे बनवाया था। बाहर से इसकी परिधि लगभग डेढ़ सौ गज़ के है। इसका भीतरी व्यास कोई छत्तीस गज होगा। दीवार इसकी कोई तीस गज ऊँची और चार गज चौड़ी है। सुनते हैं, इसमें लगभग अड़तीस लाख मन अनाज भरा जा सकता है। इसके ऊपर चढ़ने के लिए बाहर से सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जहाँ सीढ़ियाँ समाप्त होती हैं वह स्थान तीन चार गज़ लम्बा-चौड़ा है। बीच में एक पत्थर है, जिसे उठाने पर भीतर जाने का रास्ता मिलता है। भीतर ज़रा से भी खटके की इतनी प्रतिध्वनि होती है कि गोले के भीतर एक किनारे पर खड़ा हुआ मनुष्य दूसरे किनारे पर खड़े हुए मनुष्य के मन्द से मन्द शब्द को भी सुन सकता है।

[अप्रैल १९१२]

मुरशिदाबाद

जिस समय मुरशिदाबाद बङ्गाल, विहार और उड़ीसा की राजधानी था उस समय उसका जो गौरव और विभव था उसका इस समय प्रायः समूल ही नाश हो गया है। उसके बड़े बड़े महल गिरकर ज़मीन के बराबर हो गये हैं; उसके अनेक मशहूर मशहूर महल्लों की जगह जङ्गल खड़ा हुआ है; उसके अनेक नव्वाब, नाज़िम, दीवान, नायब दीवान, सिपहसलार और फ़ौजदार सफ़ेद चद्दरों में लिपटे हुए करबला की मिट्टी के साथ गहरी कब्रों के भीतर, इन्साफ के आख़िरी दिन का रास्ता देख रहे हैं। जहां किसी समय सात सौ मसजिदों से अजां की आवाज़ सुन पड़ती थी वहां इस समय सत्तर मसजिदें भी मुशकिल से होंगी। और उनमें से शायद सात ही अच्छी हालत में हों। मुरशिदाबाद में कई लाख आदमियों की बस्ती थी। पर १७६९ ईसवी के अकाल और १७७० की चेचक की बीमारी ने उसकी आबादी आधी

कर दी । १८१५ ईसवी में वहां सिर्फ १,६५,००० आदमी रह गये। और अब ? अब सिर्फ १५००० ! किसी समय मुरशिदाबाद बीस मील के घेरे में बसा हुआ था ; पर अब उसकी परिधि ६ मील से अधिक नहीं !

पलासी-युद्ध के बाद ही से मुरशिदाबाद का पतन शुरू हो गया। अंगरेज़-राजके प्रभुत्व की वृद्धि और मुरशिदाबाद के वैभव का ह्रास साथ ही साथ होता गया। धीरे धीरे दोनों अपनी चरमसीमा को पहुंच गये। यद्यपि मुरशिदाबाद की इस समय अत्यन्त ही हीन अवस्था है तथापि सौ डेढ़ सौ वर्ष पहिले उसने अनेक राजकीय खेल खेलें हैं। नहीं मालूम कितने जाल, कितने फ़रेब, कितने विश्वासघात के अभिनय वहां हुए हैं। अंगरेजी राज्य की वह जन्मभूमि है ; क्लाइव-कलङ्क की वह कृष्ण-वैजयन्ती है ; स्वामि-द्रोह, स्वार्थ और कृतघ्नता की वह पतालभेदी जड़ है। अब भी उसमें बहुत सी इमारतें और चीजें देखने के लायक़ हैं। और नहीं तो मुरशिदाबाद का नाम सुनकर अर्थलोलुप और स्वदेशशत्रु मानिकचन्द, अमीचन्द, रायदुर्लभ, राजबल्लभ, नन्दकुमार आदि का स्मरण नया हो उठता है। इन्हीं कारणोंसे बाबू पूर्णचन्द मजूमदारने मुरशिदाबाद पर, कुछ दिन हुए, एक किताब अंगरेजी में लिखी है। उसीकी कुछ बातों का ज़िक्र इस लेख में किया जाता है।

ईस्ट इंडियन-रेलवे की "लूप लाइन" में एक स्टेशन नलहाटी है। वहां से एक छोटी सी लाइन आज़मगञ्ज गई है। लक्खीसराय की तरफ से मुरशिदाबाद जाने वालों को वहीं उतरना पड़ता है। अज़म-

गञ्ज भागीरथी के एक किनारे पर है। मुरशिदाबाद दूसरे किनारे पर। मुरशिदाबाद का पुराना नाम मक़सूदाबाद है। नव्वाब मुरशिद-कुली-खाँ ने १७०४ ईसवी में, अपने नाम के अनुसार, उसे मुरशिदाबाद में बदल दिया। १२०३ ईसवी में बखतियार खिलजी ने पहले पहल बङ्गाल में मुसलमानी अमल की नींव डाली। तबसे मुरशिद-कुली खाँ तक ६८ नव्वाब बङ्गाल के मुसलमानी तख़्त पर बैठे। मुरशिदकुली खाँ ने ढाका छोड़ कर मुरशिदाबाद को अपनी राजधानी बनाया। मुरशिद ने हिन्दू-कुल में जन्म लिया था। वह एक गरीब ब्राह्मण का लड़का था। इस्फ़हान के हाज़ी सफ़ी नामक एक मुसलमान व्यापारी ने उसे मुसलमान बनाकर उसका पालन-पोषण किया था। औरङ्गज़ेब के समय में वह हैदराबाद का दीवान था। १७०१ ईसवी में वह बङ्गाल का दीवान मुक़र्रर हुआ। १७०४ में वह मुरशिदाबाद आया। अठारहवीं सदी के प्रथमार्द्ध में मुसलमानी राज्य की खूब उन्नति हुई। पर उसके उत्तरार्द्ध से उसकी अवनति शुरू हुई। उसकी अवनति के साथ ही साथ अंगरेजी-राज्य की उन्नति होती गई। १७६५ ईसवी में देहली के नाममात्रधारी बादशाह से ईस्ट इंडिया कम्पनी नाम के अंगरेजी-वणिक-समूह ने बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त की। तबतक भी मुरशिदाबाद बङ्गाल की राजधानी रहा। पर १७९३ ईसवी में स्वदेशी राज्य का शेष चिन्ह भी प्रायः जाता रहा और नव्वाब नाज़िम की सब शक्ति और प्रभुत्व लुप्त हो गई। नव्वाब नाज़िम का खिताब भर बाक़ी रह गया। वह भी १८८० ईसवी में न रहा। मुर-

शिद-कुली-खाँ से लेकर वर्तमान नव्वाब बहादुर तक १६ नव्वाब मुरशिदाबाद के सिंहासन पर बैठे। उनके नाम ये हैं—

१. मुरशिद-कुली-खां	९. सैफुद्दौला
२. शुजा खाँ	१०. मुबारकद्दौला
३. सरफ़राज़ खां	११. बाबर अली
४. अलीवर्दी खाँ	१२. आलीजाह
५. सिराजुद्दौला	१३. बालाजाह
६. मीरजाफ़र	१४. हुमायूंजाह
७. मीरक़ासिम	१५. फ़रेदूंजाह
८. नजमुद्दौला	१६ हसनअली

मुरशिदकुली खाँ ने बहुत न्याय पूर्वक राज्य किया। उसने फौज़ी खर्च कम कर दिया ; गल्ले का बाहर भेजा जाना बन्द कर दिया ; विद्या को उन्नति दी ; अनुचित कर माफ कर दिये और दीन दुखियों की खूब मदद की। उसके समय में रुपये का पाँच मन चावल बिकता था। जिसकी तनख़ाह एक रुपया थी वह भी मज़े में दोनों वक्त "पोलाव" उड़ाता था। उसके दीवन रज़ा खां का स्वभाव उसके स्वभाव से बिलकुल ही उलटा था। जो ज़मींदार मालगुज़ारी नहीं अदा कर सकते थे उनको वह रस्सों से बंधवा कर गन्दगी से भरे हुए गढ़ों में डलवा देता था। ऐसे नारकीय कुण्डोंका नाम उसने रक्खा था "वैकुण्ठ" ! मुरशिदकुली खां ने देहली के बादशाह की आधीनता अस्वीकार करके कर देना बन्द कर दिया। वह बङ्गाल,

विहार और उड़ीसा का स्वतन्त्र नव्बाब नाज़िम हो गया। उसके बाद उसके दामाद शुजा खां को निज़ामत मिली।

शुज़ा खां के वक्त में अलीवर्दी खां नामक एक पुरुष मुरशिदाबाद आया। वह शुज़ाखां के मामू के रिश्तेदारों में से था। शुजा ने उसे पटना का गवर्नर नियत किया।

शुजाखां के लड़के सरफ़राजखां की अनबन दीवान हाजी अहमद से हो गई। हाजी अहमद अलीवर्दीखां का भाई था। इस कारण इन दोनों भाइयों ने मिल कर सरफ़राज़खां से बगावत की। लड़ाई हुई। लड़ाई में सरफ़राजखां मारा गया। अलीवर्दी को मुरशिदाबाद की मसनद मिली। उस समय, मुरशिदावाद के खज़ाने में ७० लाख रुपया नक़द और ५० करोड़ रुपये का जेबर अलीवर्दी के हाथ लगा।

अलीवर्दीखां ने १६ वर्ष राज्य किया और १७५६ ईसवी में, ८० वर्ष की उम्र में, वह मरा। उसने अपने बहनोई मीरजाफ़र को अपना सिपहसलार नियत किया। उसके वक्त में मरहठों ने बड़ा उपद्रव मचाया। कई दफ़े उनसे अलीवर्दीखां को लड़ना पड़ा। एक दफे अलीवर्दीखां ने बर्दमान के पास ४५ हज़ार मरहठों को परास्त किया। पर परास्त हुई फ़ौज ने जगत सेठ के मकान का रास्ता लिया और वहां पहुंच कर दो करोड़ रुपया लूटा। बरार का सूबा, और १२ लाख रुपया सालाना चौथ देना कबूल करके अलीवर्दी ने मराठों से अपना पिण्ड छुड़ाया। उस वक्त जगतसेठ का प्रभुत्व अपार था। टकसाल उसी के यहां थी। जितने राजे, महाराजे और जमींदार थे सब उसीकी मुट्ठी में थे। अलवर्दीखां के १६ वर्ष प्रायः लड़ाई-भिड़ाई ही

में गये। तिस पर भी प्रजा उसपर खुश थी। पढ़े लिखे आदमियों की उसके यहां कद्र थी। कविता और इतिहास सुनने का उसे शौक़ था। हिन्दुओं को उसने बड़े-बड़े ओहदे दिये थे। उसके कोई लड़का न था। तीन लड़कियाँ थीं। उनको उसने अपने भाई के तीन बेटों से व्याहा। उनमें से अनीमा ख़ानम के बेटे सिराजुद्दौला को उसने गोद लिया।

अँगरेज़ और कुछ हिन्दुस्तानी इतिहास-लेखकों ने भी सिराजुद्दौला को काम-कर्दम का कीड़ा, निर्दयता का समुद्र, दुर्व्यसनों का शिरोमणि, अर्थ लोलुप और नरपिशाच आदि मधुरिमामय विशेषणों से विभूषित किया है। पर बाबू अक्षय कुमार मैत्रेय ने बँगला में सिराजुद्दौला का जीवन चरित लिख कर उसकी इस कलङ्क-कालिमा को धो कर प्रायः बिलकुल ही साफ़ कर दिया है। इस किताब को पढ़ने से यह धारणा होती है कि सिराजुद्दौला के समान सहनशील, राजनीतिज्ञ, बात का सच्चा, निर्भय, शान्ति प्रिय और रक्तपात द्वेषी शायद ही और कोई राजा या बादशाह हुआ हो। प्रायः सब कहीं अँगरेज़ों ही के लोभ, प्रतिज्ञा-भञ्जन, अन्याय, प्रतिहिंसक-स्वभाव, अनाचार, विश्वासघात आदि का परिचय मिलता है। इस पुस्तक में यह बात खूब दृढ़ता से साबित की गई है कि कलकत्ते के अन्धकूप, अर्थात् कालकोठरी, या ब्लैक होल की हत्या की कहानी बेसिर पर की एक औपन्यासिक गढ़न्त मात्र है। उसका कहीं इतिहास में पता नहीं। अँगरेज़ वणिकों के अत्याचार के कारण जब विलायत में हाहाकार और छी थू होना शुरू हुआ तब उस बात को भुला देने और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के

अधिकारियों के अपराध की गुरुता को कम करने के इरादे से हालवेल साहब ने इस झूठी कहानी की सृष्टि की। इस बात को मैत्रेय बाबू ने सप्रमाण सिद्ध करने की चेष्टा की है और उस समय के अँगरेज़ी कागज़ पत्रों से यह साबित किया है कि हालवेल साहब अन्यथावादी और घूसख़ोर था। उसने मीरजाफ़र को पदच्युत कर के मीरक़ासिम को मुरशिदाबाद का राजसिंहान दिला देने के वादे पर मीरक़ासिम से तीन लाख रुपया लिया और विलायत को झूठी रिपोर्ट कर दी कि मीरज़ाफर ने सिराजुद्दौला की माँ, मौसी और कई एक अन्य बेगमों को ढाके में क़ैद करके वड़ी ही निर्दयता से मरवा डाला। अतएव ऐसा अन्यायी और पापी पुरुष राज्य करने के लायक नहीं। यह रिपोर्ट बिलकुल ही झूठ थी। * १७६६ ईसवी में कलकत्ते के अँगरेज़ी दरबार ने इस बात की तहकीक़ात करके जो रिपोर्ट विलायत भेजा उसमें उसने इस हत्या-कहानी को सर्वथा मिथ्या बतलाया।

* In justice to the memory of the late Nabab Meer Jaffer, we think it incumbent on us to acquaint you that the horrible massacres, wherewith he is charged by Mr. Halwell in his address to the proprietors of the East India Stock (Page 45), are cruel aspersions on the character of that prince, *Which have not the least foundation in truth.*

Letter to Court of Directors, 30 th. September, 1766, Supplement.

जिस हालवेल ने इस तरह का मिथ्यावाद किया वही यदि काल कोठरी की कहानी गढ़ कर कलत्ते के अँगरेज़-सौदागरों के विषय में विलायत वालों की सहानुभूति जाग्रत करने की कोशिश करे तो क्या आश्चर्य ?

सिराजुद्दौला बड़ा स्त्रैण था। उसने एक लाख रुपये देकर देहली से फैज़ी नामक एक बार वनिता मँगाई थी। वह सिर्फ २२ सेर वजन में थी। सुन्दरता में वह दूसरी उर्वशी थी। पीछे से सिराजुद्दौला उससे नाराज हो गया और उसे उसने ज़िन्दा ही दीवार में चुनवा दिया। मोहनलाल नामक एक आदमी की बहन अत्यन्त सुन्दरी थी। उसका देहभार ३२ सेर था। वह भी सिराजुद्दौला की अङ्क-गामिनी हुई। इस उपलक्ष्य में मोहनलाल को मन्त्री का पद मिला। सिराजुद्दौला के बाद उसके महलों में कई सौ स्त्रियां निकलीं ! रानी भवानी की विधवा लड़की तारा को जब उसने बुरी नज़र से देखा तब बङ्गाल के ज़मींदार उससे बेतरह नाराज़ हो उठे। तब तक सिराजुद्दौला केवल युवराज ही था। जब वह मुरशिदाबाद का मालिक हुआ और जगत सेठ को दरबार में उसने चपत मारी तब जगत सेठ के यहां मन्त्रणा करके लोगों ने उसे विश्वासघात-पूर्वक राज्यच्युत करने की ठानी। सिराज ने अपनी मौसी घसीटी बेगम को निकाल दिया ; उसका माल असबाब ज़ब्त कर लिया ; और मीरजाफ़र को सिपहसालरी के ओहदे से दूर कर दिया। इन्हीं कारणों से लोग और भी उसके ख़िलाफ़ हो गये। यही सब बातें सिराजुद्दौला के नाश का कारण हुईं।

अँगरेज़ों ने बिना सिराज के हुक्म के कलकत्ते में क़िला बना लिया और जो अँगरेज़ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ़ से व्यापार न करते

थे, उनको भी कम्पनी के अफ़सर बिला महसूल व्यापार करने का परवाना बेचने लगे। यह सिराजुद्दौला को नागवार हुआ। उसने अँगरेज़ों से कहा, क़िला गिरा दो। पर उन्होंने यह बात न मानी। सिराज ने दो दफ़े अपना दूत भी कलकत्ते भेजा। पर अँगरेज़ उससे बुरी तरह पेश आये। इस दशा में निरुपाय होकर सिराजुद्दौला ने अँगरेज़ों की क़ासिम बाज़ार वाली कोठी पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस पर भी जब कलकत्ते का क़िला न गिराया गया तब सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ कर उस पर भी अधिकार कर लिया। कहते हैं, काल कोठरी, या अन्धकूप की हत्या इसी समय हुई।

अँगरेज़ों से सिराज ने पीछे से सन्धि कर ली। पर उसके कुछ ही दिन बाद वह भङ्ग हो गई। अँगरेज़ों ने चन्दन नगर को लूट कर फ़रासीसियों को वहाँ से निकाल दिया। इसके बाद उन्होंने लोभ के वश होकर हुगली, वर्द्धमान और नदिया को भी लूट लिया। सिराजुद्दौला की इच्छा युद्ध करने की न थी। वह अँगरेज़ों को व्यापार करने का अधिकार पहले का जैसा देने पर राज़ी था। कलकत्ते के व्यापारी अँगरेज़ भी युद्ध के खिलाफ़ थे; पर अँगरेज़ों के स्थल-सेनापात क्लाइव आर जल-सेनापति वाटसन को यह बात पसन्द न आइ। उन्होंने अपना निजी मतलब सिद्ध करने के इरादे से युद्ध करना ही निश्चित किया। जगत सेठ, मीरज़ाफ़र, कलकत्ते का भतपूव गवनर मानिकचन्द, ढाके का गवर्नर राजवल्लभ और वणिक् अमीचन्द अँगरेज़ों से मिल गये। एक दस्तावेज़ लिखी गइ। मुरशिदाबाद के ख़ज़ाने से कम्पनी वहादुर को एक करोड़, कलकत्ते के अँगरेज़,

बङ्गाली और अरमनी लोगों को ७० लाख, और अमीचन्द को ३० लाख रुपया पाने की व्यवस्था हुई। अमीचन्द को रुपया देना अँगरेज़ों को मंज़ूर न था और देने का वादा न करने से डर था कि वह उनकी गुप्त मन्त्रण नव्वाब पर जाहिर कर देगा। इसलिए क्लाइव ने दो दस्तावेजें लिखीं। एक सफ़ेद कागज पर, दूसरी लाल कागज़ पर। लाल कागज वाली जाली थी। असली में अमीचन्द को रुपये देने की शर्त न थी।

पलासी में अँगरेज़ों का सामना सिराजुद्दौला ने किया। उसके सेनापतियों में से मीरमदन और मोहनलाल को छोड़ कर किसी ने भी ईमानदारी से युद्ध न किया। मीर मदन ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। पर वह मारा गया। अकेले मोहनलाल ही क्लाइव का पराभव कर देता, पर विश्वासघात-पूर्वक लड़ाई बन्द कराकर मीर जाफ़र फौज को शिविर में ले आया। इतने में अँगरेज़ी फौज़ ने धावा करके सिराजुद्दौला की बची बचाई खैरख्वाह फौज को तितर बितर कर दिया। सिराज लाचार होकर मुरशिदाबाद आया और वहाँ से राजमहल की तरफ़ भागा। पर मीर जाफ़र के आदमी उसे रास्ते से पकड़ लाये। अन्त में बड़ी बेइज्ज़ती के साथ मीरजाफ़र के बेटे मीरन ने उसे मरवा डाला। उसके कुछ ही दिनों बाद मीरन पर बिजली गिरी और उसीसे उसकी मौत हुई। क्लाइव ने मीरजाफ़र को मुरशिदाबाद की मसनद पर बिठाया और यथेष्ट पुरस्कार भी पाया; पर आख़िर को आत्महत्या करके उसे इस संसार को छोड़ जाना पड़ा।

मीरजाफ़र ने क्लाइव को मालामाल कर दिया और अँगरेज़ वणिकों

की हर तरह मदद की। कलकत्ते में टकसाल तक जारी करने की उसने आज्ञा दे दी। पर क्लाइव के विलायत चले जाने पर कालकोठरी वाले हालवेल साहब उससे नाराज हो गये। इसका रण आपने मीर-जाफ़र को पदच्युत करके उसके दामाद मीरक़ासिम को मुरशिदाबाद की गद्दी इनायत फ़रमाई। मीरक़ासिम ने कलकत्ते के गवर्नर और कौंसिल के मेम्बरों को गद्दी पाने पर २० लाख रुपया देने का वादा किया था। पर इस वादे को उसने पूरा न किया। इसके सिवा और भी कई तरह से उसने अँगरेज़ों को नाराज़ कर दिया। अँगरेज़ों ने लड़ाई में उसे परास्त किया और मीरजाफ़र को दुबारा मुरशिदाबाद की मसनद पर बिठलाया। इस हादसे के दो वर्ष वाद मीरजाफ़र की मौत हुई।

मीरजाफ़र का लड़का नजमुद्दौला गद्दी पर बैठा। पर गद्दी की प्राप्ति के उपलक्ष्य में उसे २१, ००, ००० रुपया कलकत्ते के अँगरेज़ी कौंसिल के मेम्बरों को देना पड़ा। नजमुद्दौला के वक्त में क्लाइव फिर कलकत्ते पधारे और देहली के नाम धारी वादशाह से कम्पनी वहादुर के लिए बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी की सनद आपने हासिल की। इसके वाद आपने मुल्क का प्रवन्ध अपने हाथ में लिया और नजमुद्दौला के लिए ५३ लाख रुपये सालाना वसीक़ा मुक़र्रर कर दिया। इस पर नजमुद्दौला ने बड़ी खुशी ज़ाहिर की। उसने कहा—"अब मैं जितनी नर्त्तकियां चाहूंगा रख सकूंगा" तब से मुरशिदाबाद की नव्वाबी में घुन लग गया और नवाब की सारी शक्ति, धीरे धीरे, ह्रास होते होते कम्पनी के हाथ में चली गई।

सैफुद्दौला, नजमुद्दौला का छोटा भाई था। उसका वसीका कम्पनी बहादुर ने काट कर ४२ लाख कर दिया। नव्वाब के नाम के साथ सिर्फ नव्वाबी रह गई। उसके और अख़तियारात लन्दन में कम्पनी के डाईरेक्टर्स के दफ्तर में जा पहुंचे। सैफद्दौला ने सिर्फ चार वर्ष—१७६६ से १७७० ईसवी तक मुरशिदाबाद की मसनद का सुख भोगा। इस बीच, १७६६ ईसवी में, चेचक की बड़ी विकराल बीमारी पैदा हो गई। उसने ६३ हजार आदमियों को हज़म कर लिया। नव्वाव साहब को भी उसने न छोड़ा।

मुबारकुद्दौला को नव्वाबी मिली। उसकी उम्र उस वक्त सिर्फ १२ वर्ष की थी। वह मीरजाफ़र का बेटा था। उसकी माँ का नाम बव्वू बेगम था। पर हेस्टिंग्ज़ ने बव्वू बेगम को हटा कर मुबारकुद्दौला की सौतेली माँ मनोबेगम को बालक नव्वाव का रक्षक नियत किया। सगी को छोड़ कर सौतेली माँ को यह अधिकार क्यों मिला इसका ठीक ठीच पता नहीं चलता। पर मनोबेगम के वक्त के काग़ज़-पत्र जो जाँचे गये तो बहुत से रुपये का हिसाब ही न मिला। तहक़ीक़ात हुई। उससे मालूम हुआ—मनी बेगम ने ख़ुद कहा कि—कई लाख रुपया माननीय गवर्नर जनरल, श्रीयुत हेस्टिंग्ज़ साहब बहादुर, ने कबूल फ़रमाया था। महाराज नन्दकुमार ने हेस्टिंग्ज़ पर बेगम से रुपये लेने का इलज़ाम लगाया; पर हेस्टिंग्ज़ ने अपने विलायती मालिकों को समझा-बुझा कर सन्तुष्ट कर लिया। मुबारकुद्दौला का वसीक़ा सिर्फ १६ लाख साल रह गया। माल के दफ्तर मुरशिदाबाद से कलकत्ते उठ गये। न्याय-विभाग का काम भी कम्पनी बहादुर ने

अपने हाथ में ले लिया। निज़ामत अदालत भी कलकत्ते चली गई। महाराज नन्दकुमार पर एक जाली दस्तावेज़ बनाने का इलज़ाम लगा हेस्टिंग्ज ने उन्हें फांसी दे दी।

इसके आगे मुरशिदाबाद के इतिहास में कोई विशेष महत्व की बात नहीं है। इसलिए अब हम मुरशिदाबाद की दो चार ऐतिहासिक इमारतों का ज़िक्र करते हैं।

क़िला निज़ामत भागीरथी के किनारे है। उसीके भीतर महल, इमामबाड़ा, रहने के मकान, घण्टा घर, बङ्गले और कई मसजिदें हैं। क़िले में कई फाटक हैं। उनमें से दक्षिण फाटक सबसे अच्छा है। ख़ास ख़ास फाटकों के नीचे से अम्वारी समेत हाथी निकल सकता है। इन फाटकों के ऊपर नौबतख़ाने हैं, जहां सुबह, शाम और आधी रात को नौबत बजा करती है।

मुरशिदाबाद में जो महल है उसका नाम बड़ी कोठी या हज़ार द्वारी है। वही मुरशिदाबाद की मशहूर इमारत है। उसमें बहुत सी चीज़ें देखने लायक है। यह इमारत ४२४ फुट लम्बी, २०० फुट चौड़ी और ८० फुट ऊँची है। नव्वाब नाज़िम हुमायूं जाहने इसकी नींव १८२९ ईसवी में, डाली। इसके बनने में ८ वर्ष लगे। कर्नल मेकल्यूड की निगरानी में यह बनी, पर बनाया इसे हिन्दुस्तानी ही कारीगरों ने। यह बड़ी ही सुन्दर इमारत है और तीन खण्डों में बनी हुई है। नीचे के खण्ड में तोशकख़ाना, सिलहखाना और नहाफ़िज़ख़ाना है। इनके सिवा कई एक दफ्तर भी हैं। दूसरे खण्ड में दरबार का कमरा, मुलाक़ात का कमरा, खाना ख़ाने का कमरा, सोने का कमरा,

गोलघर इत्यादि हैं। तीसरे खण्ड में पुस्तकालय, नाचघर इत्यादि हैं। सब कमरे और दीवान-खाने खूब लम्बे, चौड़े और सजे हुए हैं। उनमें जो सामान हैं, सब खूबसूरत और बेश-कीमती है।

यहां के पुस्तकालय में हाथ से लिखी हुई फ़ारसी और अरबी की अनेक उत्तमोत्तम और अप्राप्य पुस्तकें हैं। यहां की जैसी बहुमूल्य कुरान की पुस्तकें हिन्दुस्तान में और कहीं नहीं। कलकत्ते में लार्ड कर्जन की कृपा से, महारानी विक्टोरिया की यादगार में, जो इमारत बन रही है, उसमें रखने के लिए यहां से कई अलभ्य पुस्तकें भेजी गई हैं। इस पुस्तकालय की दो चार पुस्तकों के नाम हम नीचे देते हैं—

१—कुरान आलम गीरी और औरङ्गजेब की पुस्तक ६६५ हिजरी में याकूत मुस्तसिमी की लिखी हुई। यह बहुत प्रसिद्ध लेखक हुआ है। इस कुरान में औरङ्गजेब की मुहर है। उसमें लिखा है—"अल मुज़फ्फर मुही उद्दीन औरङ्गजेब बहादुर आलम गीर बादशाह गाज़ी, १०७६ हिजरी।"

२—सिर्फ़ १६ पृष्ठों पर लिखी हुई कुरान की पुस्तक।

३—कुरान की पुस्तक। बहुत ही छोटे साँचे की—सिर्फ़ २ इञ्च लम्बी, २ इञ्च चौड़ी!

४—अवध के नव्वाब वज़ीर नसीरुद्दीन हैदर के लिए लिखी गई (२४ इञ्च ×१२ इञ्च) कुरान की पुस्तक। दाम ३०,००० रुपए।

५—अली के हाथ की लिखी हुई कुरान की पुस्तक। अरब से एक लाख रुपये में ख़रीद कर लाई गई!

६—अनवार-सुहेली। ९४० हिजरी में मुहम्मद यूसुफ़ समर-

कन्दी की लिखी हुई। इस पर अकबर की मुहर और दस्तख़त हैं—"दीदा शुद अल्ला हो अकबर।"

७—फ़ारसी-कवियों की कविता का संग्रह। इस पर देहली के बादशाह शाह आलम की मुहर है।

८—अकबर नामा। अबुलफ़ज़लका लिखा हुआ। अबुलफ़ज़्ल अक़बर के नवरत्नों में से था। इस पर एक जगह लिखा हुआ है—"अहमद व हमराज़ जहांगीर बादशाह।" दूसरी जगह लिखा हुआ है—"अफ़ज़ल-खां बन्दये शाहेजहां।"

९—पन्दनामा जहाँगीरी। यह ७ जिल्दों में है। जहाँगीर के लिए फ़ारस के रहने वाले मीर इमदाद नामक लेखक ने, १६०७ ईसवी में लिखा। ग़दर के वक्त अँगरेज़ों को यह पुस्तक देहली के शाही पुस्तकालय में मिली थी। पीछे से कलकत्ते की हैमिल्टन कम्पनी ने इसे मुरसिदा बाद के नव्वाब नाज़िम को ७,००० रुपये में बेंचा।

१०—पन्दनामा अरस्तातलीस। अरिस्टाटल की उक्तियों का फ़ारसी अनुवाद। १०५१ हिजरी में शाहज़ादा दारासिकोह का लिखा हुआ।

इस महल में चित्र भी बहुत हैं और कोई कोई बहुत कीमती हैं।

यहां के सिलहख़ाने, अर्थात् शस्त्रागार में अनेक पुराने और बहु-मूल्य हथियार हैं। कितनी ही उत्तमोत्तम तलवारें, पेशक़ब्ज़ कटार, भुजालियां, पिस्तौल, ढालें, भालें, कुकड़िया, तत्र इत्यादि हथियार बड़ी ही सुन्दरता से दीवारों पर लगे हुए हैं। कोई २० तरह की तो सिर्फ़ तलवारें हैं। बहुत से हथियार ऐसे हैं जिनसे मुरशिदाबाद के नव्वाब

नाज़िम और उनके सिपहसालारों और अमीरों ने लड़ाई में काम लिया है। यहाँ के अनेक हथियार भी, लार्ड कर्ज़न की कृपा से, विक्टोरिया की यादगार में जो इमारत कलकत्ते में बन रही है, उसमें रखने के लिए उठ गये हैं। दो चार हथियारों के नाम हम नीचे देते हैं—

१—विक्रमादित्य का भाला—मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं से छीना गया। फल के ऊपर एक तरफ़ विष्णु का दूसरी तरफ़ गरुड़ का चित्र है। फल की लम्बाई १८ इञ्च। सोने से मढ़ा हुआ।

२—तैमूर की तलवार—इस पर फ़ारसी में खुदा हुआ है—"अमीरे साहब केरान।" अक्षर सोने के हैं।

३—फ़ारस के बादशाह शाह अब्बास के समय में मशहूर कारीगर असदुल्ला इस्फ़हानी की बनाई हुई कितनी ही तलवारें।

४—औरङ्गज़ेब की तलवार। औरङ्गज़ेब का नाम खुदा हुआ।

५—फ़ारस के शाह अब्बास की निज की तलवार जिसे वह हाथ में रखता था।

६—देहली की बनी हुई तलवार, २ फ़ुट ६ इंच लम्बी। इस पर "महम्मदशाह गाज़ी" खुदा हुआ है।

७—वारन हेस्टिंग्ज का दिया हुआ कटार। इसे हेस्टिंग्ज ने नव्वाब नाज़िम को नज़र किया था।

८—बारह हज़ार रुपये में खरीदे गये दो पिस्तौल। इन पर सोने और चाँदी का बहुत अच्छा काम है।

यहां के तोशेख़ाने में जेवर और जवाहिरात भी बहुत क़ीमती क़ीमती हैं। अनेक हीरे, पन्ने, लाल और मोती ऐसे हैं जो अपने

रूप, रंग, बड़ाई और इतिहास के कारण प्रसिद्ध हैं। अनेक रत्न ऐसे हैं जो देहली के बादशाहों के पास रहे हैं। इस तोशेख़ाने में कुछ बहु-मूल्य हथियार भी हैं; उन पर तरह तरह के रत्न जड़े हुए हैं। यहां एक तलबार है जिस पर जड़े हुए सिर्फ़ रत्नों की क़ीमत कोई ३०,००० रुपये हैं। एक हीरों से जड़ा हुआ सरपेंच है। कलकत्ते की हैमिल्टन कम्पनी ने इसके एक ही हीरे की क़ीमत बेशुमार बतलाई है। लोग कहते हैं कि यह सरपेंच अकबर का है। एक हार बहुत मनोहर और बहुमूल्य है। उसमें बेशक़ीमती मोती, लाल, नोलम और हीरे हैं। एक लाल के ऊपर खुदा हुआ है—"जहाँगीरशाह इब्न अकबरशाह, १०१८ हि०।" इसी हार को नादिरशाह के डर से देहली के बादशाह महम्मदशाह ने मुरशिदाबाद भेज दिया था।

मुरशिदाबाद के इस महल में बहुत पुराने पुराने कागज़ात अभी तक रक्खे हैं। उनमें से कितनी ही सनदें, दस्तावेजें, फ़रमान और सन्धिपत्र हैं। कुछ कागज़ कलकत्ते के नये विक्टोरिया भवन में रखने के लिए चले गये हैं। वारेन हेस्टिंग्ज, मेक्फरसन, लार्ड कार्नवालिस और सर जान शोर के हाथ से लिखे हुए कई पत्र अब तक अच्छी तरह सुरक्षित हैं। अँगरेज़ों और नव्वाब नाज़िमों के दरमियान जो सन्धिपत्र लिखे गये थे वे भी अब तक विद्यमान हैं। उनकी तफ़सील इस प्रकार है—

(१) १७६३ ईसवी का सन्धिपत्र, मीरजाफ़र और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दरमियान। इसी के अनुसार मीरक़ासिम को पदच्युत करके मीरजाफ़र को दुबारा मुरशिदाबाद की मसनद मिली और मीर जाफ़र

ने अँगरेज़ों को वर्दमान, मेदनीपुर और चटगाँव के चकले दिये।

(२) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और नजमुद्दौला के दरमियान, १७६५ ईसवी की सन्धि। इसके मुताबिक कम्पनी ने नव्वाब की मदद करने का भार अपने ऊपर लिया।

(३) १७६५ ईसवी का इक़रारनामा। जनमुद्दौला और कम्पनी के दरमियान। इसके अनुसार नव्वाब ने ५४ लाख सालाना वसीक़ा मंजूर किया।

(४) सैफुद्दौला और कम्पनी के दरमियान, १७६६ ईसवी की, सन्धि। अँगरेज़ों ने नव्वाब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। नव्वाब ने सिर्फ ४२ लाख रुपया सालाना अपने ख़र्च के लिए लेना मंजूर किया।

(५) १७७० ईसवी का सन्धि-पत्र। कम्पनी बहादुर और नव्वाब मुबारकुद्दौला के दरमियान। नव्वाब का सिर्फ ३२ लाख रुपया साल वसीक़ा कुबूल करना।

ये सब सन्धिपत्र कलकत्ते पहुंच गये हैं। इनपर क्लाइव, ड्रेक, वाटसन, वारन हेस्टिंग्ज इत्यादि के असली दस्तख़त हैं। इङ्गलैण्ड के राजा चौथे विलियम का लिखा हुआ, नव्वाब मुबारकुद्दौला के नाम, एक पत्र भी यहाँ यथावत् रक्खा हुआ है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मीरजाफ़र को घड़ी, मेज़, सन्दूक, आईने इत्यादि बहुत सी अच्छी अच्छी और कीमती चीजें जो नजर में दी थीं वे भी यहां बड़े यत्न से रक्षित हैं। ये सब ऐतिहासिक चीजें अवलोकनीय हैं।

मुरशिदाबाद का इमामबाड़ा एक मशहूर इमारत है। उसके बनाने

में ६ लाख रुपये खर्च हुए थे। सिर्फ ११ महीने में वह बना था। मेसनों और मजदूरों को खाना, कपड़ा भी मिलता था। वे दिन-रात काम करते थे। इमारत खतम होने पर उनको दुशाले और रूमाल इनाम मिले थे। उस वक्त सारा मुरशिदाबाद दुशाला मय हो गया था। इस इमामबाड़े की लम्बाई ६८० फुट है। लखनऊ के इमामबाड़े से उतर कर हिन्दुस्तान में इसी का नम्बर है। इसमें जो लेख है उसमें लिखा है कि "यह दूसरा करबला है।" इसके खम्भे बहुत ही खूब सूरत और ऊँचे हैं; इसका फर्श सङ्गमरमर का हैं; इसके मण्डप के भीतरी हिस्से में सोने और चाँदी का काम है। मुहर्रम के वक्त दस बारह रात तक इसमें खूब रोशनी होती है। उस समय इसकी शोभा अपार हो जाती है।

चौक-मसजिद, इस समय, मुरशिदाबाद में सब से बड़ी मसजिद है। १७६७ ईसवी में उसे मीरजाफ़र की बीबी, मनीबेगम, ने बनवाया था। यह मसजिद बहुत खूबसूरत है और अच्छी हालत में है।

मुरशिदाबाद से थोड़ी दूर पर वह जगह है जहां नव्वाब नाजिम का तोपख़ाना था। वहां पर अब सिर्फ एक तोप रह गई है। वह बहुत बड़ी है। उसका नाम है "जहां कुशा"। वह एक गाड़ी पर चढ़ी हुई थी। पर इस समय गाड़ी के पहिये तक गायब हो गये हैं। पर उसका कुछ हिस्सा, जो बहुत मजबूत लोहे का था, अब तक उसके नीचे देख पड़ता है। तोप की बग़ल में पीपल का एक पेड़ उग आया है। उसने तोप को अपनी गोद में रख कर उसे जमीन से ४ फुट

ऊँचा उठा लिया है। यह तोप १७ फुट ६ इंच लम्बी है। इसका वजन २१२ मन है। १६३७ ईसवी में इसे जनदिन नाम के कारीगर ने ढाके में, बनाया था। इस पर कई लेख खुदे हुए हैं जिन में से सिर्फ दो पढ़े जाते हैं।

मुबारक-मंजिल मुरशिदाबाद के महल से दो मील है। वहां ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दफ्तर थे। जब दफ्तर कलकत्ते उठ गये तब नव्वाब हुमायूं जाह ने उसे दस लाख में खरीद लिया। इस इमारत के सामने काले पत्थर का एक तख्त है। सुल्तान शुजा के वक्त से बङ्गाल के नव्वाब नाज़िम इसी तख्त पर बैठते थे। बुखारा के रहने वाले ख्वाजा नज़र नाम के कारीगर ने इसे, १६४३ में, बनाया था। पलासी की लड़ाई के बाद क्लाइव ने मीरजाफ़र को मंसूर-गञ्ज में, इसी तख्त पर बिठलाया था। १७६६ में, बङ्गाल, विहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करके, क्लाइव, नजमुद्दौला के बराबर, इसी तख्त पर बिराजे थे। जब से मुरशिदाबाद के नव्वाब दीवानी का बोझ अपने सिर से उतार कर हलके हो गये, तब से उन्होंने इस तख्त पर बैठना छोड़ दिया। इस साल जब लार्ड कर्ज़न मुरशिदाबाद में मुबारक मंजिल देखने पधारे थे तब आपने अपने आसन से इसे कृतार्थ किया था। अब यह तख्त कलकत्ते उठ आया है।

मोती झील महल से कोई दो मील है। प्राचीन गौड़ की गिरी हुई इमारतों से, अलवर्दी खां के दामाद, नवाजिश अहमद ने यहां पर एक मकान बनवाया। धीरे-धीरे और भी कई अच्छी अच्छी इमारतें वहां पर बन गईं। एक मसजिद भी बन गई। सिराजुद्दौला की मौसी,

घसीटी बेगम, यहीं रहती थीं। यहां पर बहुत से राजनैतिक खेल हुए हैं। १७५७ ईसवी में यहीं से सिराजुद्दौला ने पलासी की लड़ाई के लिए प्रस्थान किया था। दिवानी की सनद हासिल करने के बाद यहीं क्लाइव ने जमींदारों से नज़रें ली थीं। १७७१-७३ में, जब वार्न हेस्टिंग्ज नव्वाब नाज़िम के दरवार में पोलिटिकल रेजिडेन्ट थे तब, आप यहीं रहा करते थे। यहीं पर सर जान शोर भी कुछ दिनों तक रहे थे।

गङ्गा के दूसरे किनारे पर खुशवाग़ नाम का एक बाग़ है। उसमें अलवर्दी खां और उसके कुटुम्बियों की कब्रे हैं। सिराजुद्दौला की कब्र भी यहीं पर है।

जाफ़रगञ्ज का मक़बरा महल से कोई डेढ़ मील है। मीरजाफ़र से लेकर हुमायूं जाह तक—मुरशिदाबाद के नव्वाव नाज़िमों—की कब्रें यहीं हैं। यहां कई आदमी कुरान का पारायण करने के लिए नियत हैं। हर तीसरे दिन एक परायण हो जाता है और फिर वह नये सिरे से शुरू किया जाता है।

हीरा झील जाफ़रगञ्ज से थोड़ी ही दूर है। मसनद पर बैठने के पहले यहीं सिराजुद्दौला ने अपना विलास भवन वनवाया था और यहीं पर वह अनङ्गरङ्ग में मस्त रहता था। पलासी की लड़ाई से लौटकर यहीं से वह, अपनी बेगम, लतीफुन्निसा, को लेकर राजमहल की तरफ़ भागा था। यहीं क्लाइव ने मीरजाफ़र की बाँह पकड़ कर उसे तख्त मुबारक पर बिठाया था।

मुरशिदाबाद के पास ही क़ासिम-बाजार है। १६५८ ईसवी में

वहां पहले पहल अँगरेज़ वणिकों ने अपनी कोठी बनाई। अब इस कोठी का समूल नाश हो गया है। सिर्फ़ एक टीला बाकी है। पर अट्ठारहवीं सदी में अँगरेज़ों की रेजिडेन्सी की इमारत बहुत अच्छी थी। शुरू शुरू में हेस्टिंग्ज साहब वहीं पर हिन्दुस्तानियों से माल खरीदा करते थे। वहीं आपने एक अँगरेज़ विधवा से विवाह भी किया था। कोठी पर दख़ल करने के बाद सिराजुद्दौला ने वहीं से हेस्टिंग्ज को क़ैद करके मुरशिदाबाद भेजा था।

मुरशिदाबाद के विषय में अभी बहुत सी बातें लिखनी बाकी हैं। पर लेख बढ़ जाने के भय से हम अधिक नहीं लिखा चाहते। सिराजुद्दौला को पदच्युत करके मीरजाफ़र को मसनद दिलाने के उपलक्ष्य में मुरशिदाबाद के ख़जाने से कोई दो करोड़ रुपया कलकत्ते के अङ्गरेज़ अधिकारियों को दिया गया था। उनमें से कुछ की तफ़सील नीचे देकर हम इस लेख को ख़तम करते हैं—

	रुपया
गवर्नर ड्रेक	४, ७२, ५००
कर्नल क्लाइव	३५,१०,०००
वाट साहब	१९,५५,०००
मेजर किर्क पैट्रिक	४,०५,०००
वाल्श साहब	८,२३,७५०
स्क्राफटन साहब	३,३७,५००
लूशिंटन साहब	८४,३७५

[दिसम्बर १९०६]

तिबत ।

तिबत की ऊँचाई समुद्रतल से १४,५०० फुट है। उसके उत्तर में क्यूलन और दक्षिण में हिमालय-पर्वत है। पृथ्वी पर जितने देश हैं तिबत की बराबर एक भी ऊँचा नहीं। उसे पर्वतमय कहना चाहिए। उसमें पहाड़ियों और पर्वत श्रेणियों की बड़ी प्रचुरता है। बर्फ़ से ढकी हुई हिमालय की चोटियाँ चारो ओर गगन-चुम्बन करती हैं। यह देश इतना बीहड़ है कि इसके रास्ते निहायत ही खराब हैं। इससे प्रवास करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है।

तिबत के लोग बौद्ध-धर्म के अनुयायी हैं वे दूसरे देश वालों को अपने यहाँ नहीं आने देते और न उनसे कोई सम्बन्ध रखना चाहते हैं। इसी कारण परकीय देश वालों को तिबत-सम्बन्धी बहुत कम ज्ञान है। तिबत की राजधानी लासा नगर है। लासा में दो पुरुष सर्व-प्रधान हैं। वे लामा कहलाते हैं। एक लामा राज्य-सम्बन्धी हैं; दूसरा

धर्म-सम्बन्धी। पिछले लामा का नाम दलाय लामा है। इस लामा का दर्शन अन्य देशवालों के लिए बहुत ही दुर्लभ है। तिबत में जितने महन्त, पुरोहित या धर्माध्यक्ष हैं सब लामा कहलाते हैं।

तिबत जाने में अनेक कष्ट, कठिनाइयां और बाधायें हैं। एक तो पथरीला और जङ्गली देश, दूसरे चोर और लुटेरों की अधिकता; तीसरे वहाँ न जाने की प्रतिबन्धकता; चौथे जाड़े का प्राचुर्य्य, तथापि आज तक बहुतरे योरप-निवासी और दो तीन हिन्दुस्तानी लासा तक हो आये हैं और अनेक पुस्तकें तिबत-सम्बन्धी लिखी जा चुकी हैं। पहले योरोपियन प्रवासी ने तिबत में, १३२५ ईसवीमें, सफर किया। उसके बाद, और लोग वहां गये और वहां की अनेक बातों में विज्ञता प्राप्त की। कुछ दिन हुए लैंडर नामक एक साहब तिबत पधारे थे। आप पर जो जो आपत्तियां आईं उनका वर्णन सुनने से पत्थर भी पिघल जाय। उनकी वहां बड़ी ही दुर्दशा हुई; उनका शरीर तक छिन्न भिन्न कर डाला गया। तथापि वे जीते जागते वापस आये। उन्होंने अपने प्रवास का जो वृत्तान्त लिखा है वह पढ़ने लायक है। ह्यू, नाइट गार्डन और मारखम वग़ैरह ने भी तिबत पर किताबें लिखी हैं; परन्तु लैंडर और कप्तान व्यल्बी की किताबें बहुत मनोरञ्जक हैं। कप्तान व्यल्बी ने १८१६ ईसवी में लद्दाख से चल कर, उत्तरी तिबत होते हुए, पेकिन तक सफ़र किया। मई में वे लद्दाख से रवाना हुए और दिसम्बर में हाँगकाँग के रास्ते कलकत्ते वापस आये। छः महीने तिबत पार करने में उनको लगे। उनकी यात्रा-सम्बन्धी कठिनाइयों का वर्णन पढ़ते वक्त रोमाञ्च हो आता है और उनके

साहस, धैर्य्य तथा कष्ट-सहिष्णुता का विचार करके चित्त आश्चर्य्य-सागर में डूब जाता है। चार महीने तक असबाब अपनी पीठ पर लाद कर उन को पैदल चलना पड़ा। खाने को सिवा जङ्गली जीवों के मांस के और कुछ उनको नसीब नहीं हुआ। कई महीने उनको मनुष्य-जाति के दर्शन नहीं हुए। परन्तु धन्य है उनके साहस को! उन्होंने एक बार पामीर और तिबत के कुछ हिस्से में सफ़र किया था। उस समय ग्यारहवीं बङ्गाल लैंसर्स का शहज़ादमीर नामक दफ़ेदार उनके साथ था। भाग्यवश व्यल्बी साहब को यह दफ़ेदार मिल गया था। उससे उनको बड़ी मदद मिली।

तिबत में चीन का सार्वभौमत्व है; वह चीन का करद राज्य है। हर साल उसे चीन को कर देना पड़ता है। तिबत का राज्यसूत्र चीन है। चीनियों को छोड़कर तिबत वाले और किसी को अपने देश में नहीं आने देते। तिबत वाले शायद यह समझते है कि अपने से अधिक सज्ञान लोगों को अपने देश में आने देने से वे लोग धीरे धीरे तिबत का आधिपत्य अपने हाथ में कर लेंगे।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के पहले गवर्नर जनरल हेस्टिंग्ज के समय तक तिबत का बहुत ही कम हाल इस देश वालों को मालूम था। तिबत और हिन्दुस्तान से किसी तरह का सम्बन्ध तब तक न था। परन्तु हेस्टिंग्ज ने रंगपुर के रहने वाले पुरन्दर गिरि नामक संन्यासी को तिबत के प्रधान लामा के पास भेजा। उस संन्यासी ने अपना काम सफलता पूर्वक किया और वहां से सकुशल लौट भी आया। परन्तु तिबत के सम्बन्ध से बाबू शरच्चन्द्र दास ने, इस समय, बहुत

बड़ा नाम पाया है। १८८२ में दार्जिलिंग से रवाना हो कर वे लासा तक चले गये ; लासा में वे कई महीने तक रहे भी। उन्होंने तिबतपर जो पुस्तक लिखी है उसका सब कहीं बड़ा आदर है। इस उपलक्ष्य में गवर्नमेंट ने उनको राय बहादुर की पदवी देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। बौद्धशङ्कराचार्य्य दलाय लामा के विषय में दास बाबू, अपनी किताब में एक जगह लिखते हैं—

"हम को दलाय लामा के दर्शन हुए। उनकी उम्र, इस समय, आठ वर्ष की है। हमने देखा कि वे एक उच्च और सुसज्जित सिंहासन पर बैठे हैं। उनके दर्शनों के लिए दर्शक और पूजक लोग बड़ी भाव-भक्ति से एक एक करके भीतर जाते थे। वहाँ पर लामा के चरणस्पर्श करने पर लामा के अधिकारी उनको आशिर्वाद देते थे। जब हम लामा के पास से वापस आकर अपनी जगह पर बैठे तब हम को लामा का प्रसाद रूप थोड़ा सा चाय मिला। उसे हमने पी लिया ; परन्तु उनके नैवेद्य में से जो भात हम को दिया गया, वह हम ने नहीं खाया ; उसे हमने अपने पास रख लिया। इसके बाद लामा के प्रधान पुरोहित ने कुछ मन्त्र पाठ कर के लामा के चरणों पर अपना मस्तक रक्खा। जब यह हो चुका तब उसने सब को आशीर्वचन कह कर सभा बर्खास्त की"।

कवागुची केकय नामक एक जापानी भिक्षु तिबत में बहुत दिन तक रहा है। उसने भी अपने प्रवास का वर्णन प्रकाशित किया है। तिबत में जगह जगह पर मठ है। "ओं मणि पद्मे हूं" तिबतियों का प्रधान मन्त्र है! लम्बे लम्बे काग़ज़ों पर मन्त्र लिख कर वे काग़ज़

एक प्रकार के पहियों पर लपेट दिये जाते हैं। ये प्रार्थना-चक्र लकड़ी या पत्थर के खम्भों पर लगे रहते हैं और हवा के ज़ोर से घूमते हैं। पहिये के साथ काग़ज़ का टुकड़ा भी घूमा करता है। इस घूमने को तिवत वाले मन्त्र की आवृत्ति मानते हैं। तिबत में कई मठ और मन्दिर बहुत बड़े बड़े हैं। उन में पाठशालायें भी हैं; पुस्तकालय भी हैं; और शिक्षक लामा तथा विद्यार्थियों के रहने के स्थान भी हैं।

जिस समय अंगरेज़ी गवर्नमेंट ने सिकिम पर अपना प्रभुत्व जमाया उस समय, पहले पहल, तिवत और भारतवर्ष के सम्बन्ध का सूत्रपात हुआ, एक सन्धि-पत्र लिखा गया। उस पर चीन और भारत-वर्ष की गवर्नमेंट ने हस्ताक्षर किये। परन्तु इस सन्धिपत्र के नियम निर्विवाद न हुए; बहुत सी झगड़े की बातें रह गईं। कुछ दिनों में याटुङ्ग नामक नगर में तिवतवालों ने एक मण्डी खोली। याटुङ्ग तिबत की सीमा के भीतर है। वहां पर तिबत और हिन्दुस्तान, दोनों देशों के व्यापारियों को व्यापार करने की अनुमति मिली। परन्तु सन्धिपत्र के विवादास्पद नियमों का निवटारा न हुआ। झगड़े की जड़ें वनी रहीं। उन्हीं को आधार मान कर जनरल मैकडो-नल्ड और कर्नल यङ्गहसवैंड ने ससैन्य और सशस्त्र तिबत में प्रवेश किया। जब पहले पहल तिबत मिशन ने अपना अस्तित्व प्रकट किया तब यह बात कहीं गई कि वह सर्वथा शान्तिमूलक है; वह अशान्ति अथवा विद्रोह का कारण न होगा। परन्तु इस मिशन ने अब विकराल रूप धारण किया है। तूना में तिवन वालों की जो हत्या हुई है उसने इसके शान्त स्वरूप को बिलकुल ही बदल कर और का और कर

दिया है। झानसी में, इस समय, यह मिशन रुका पड़ा है। इधर इसे लासा की तरफ़ आगे बढ़ने की आज्ञा मिल चुकी है, उधर तिबत वाले इसका अबरोध करते है। मामला टेढ़ा है। जान पड़ता है कि वह मिशन शीघ्र ही एक भयङ्कर चढ़ाई का रूप धारण करेगा।

इस मिशन के सम्बन्ध में इस समय पारलियामेंट में खूब वाद-विवाद हो रहा है। आसाम के भूतपूर्व चीफ़ कमिश्नर काटन साहब इस विवाद में अग्रणी हैं। वे इस मिशन का भेजा जाना प्रसन्द नहीं करते। इस मिशन के भेजे जाने के कई कारण बतलाये जाते हैं। उन में से कुछ कारण एक दूसरे के विरोधी भी हैं। पहला कारण यह बतलाया जाता है कि तिबत वालों ने सन्धिपत्र के नियमों की पाबन्दा नहीं की; दूसरा यह कि मिशन के अफ़सरों से मिल कर झगड़े की बातों को तै करने के लिए तिबतवालों ने अपना कोई अफ़सर नहीं भेजा; तीसरा यह कि तिबत वाले भीतर ही भीतर रूस से मिले हैं; चौथा यह कि तिबत की सीमा हिन्दुस्तान की सीमा से मिली हुई होने के कारण तिबत में अँगरेज़ी गवर्नमेंट के स्वत्वों की रक्षा आवश्यक है। परन्तु काटन आदि विचक्षण पुरुषों का मत है कि ये कारण बहुत ही निर्बल हैं; सन्धि पत्र के नियमों का पालन होना और न होना बराबर है; तिबत और भारतवर्ष का व्यापार बहुत कम है; इस मिशन का भेजा जाना रूस और चीन दोनों राज्यों को पसन्द नहीं।

तिबत के विषय में एक नई बात सुन पड़ी है। वह यह है। कोई २० वर्ष हुए घोमंग लोबजङ्ग नामक एक आदमी मङ्गोलिया से लासा को आया। वहाँ वह दाबङ्ग के मठ में वेदान्त का अध्यापक नियत

हुआ। बहुत दिनों तक उसने अपना काम बड़ी योग्यता से किया। ५२ वर्ष की उम्र में वह रूस के दक्षिणी प्रान्तों में चन्दा एकत्र करने के इरादे से गया। उन प्रान्तों में बहुत से बौद्ध रहते हैं। यह बात १८६८ की है। इस सम्बन्ध में उसे सेंटपिटर्सबर्ग को भी जाना पड़ा। वहां रूसियों ने हेल मेल पैदा करके उसे अपने वश में कर लिया। उसको उसका कर्तव्य अच्छी तरह समझा दिया गया। वह रूस की तरफ़ से बहुत सी वेशकीमती चीज़ें दलाय लामा को उपहार में लाया। लामा महोदय उपहार से बहुत प्रसन्न हुए। घोमङ्ग ने कहा कि यदि आप एक बार सेंटपिटर्सबर्ग पधारें तो तिब्बत और रूस में हार्दिक मैत्री हो जाय; तिबत की रक्षा का भार रूस अपने सिर लेले और सम्भव है, ज़ार महोदय-किरिस्तानी मत छोड़ कर बौद्ध हो जायँ; क्योंकि किरिस्तानी मत में उनका बहुत कम विश्वास है! लामा ने इस बात को स्वीकार कर लिया; उसने प्रसाद के तौर पर कुछ चीज़ें भी ज़ार को भेजीं; परन्तु उसका रूस की राजधानी को जाना दूसरे धर्म्माध्यक्ष को पसन्द नहीं आया। इससे दलाय लामा को वह विचार छोड़ना पड़ा।

घोमंग लोवज़ंग को किसी कारण से फिर रूस जाना पड़ा। फिर भी रूसियों ने उसे झाँपे में फाँसा। इस बार वह एक पत्र ज़ार की तरफ़ से लाया जिस में लामा महोदय को यह सुझाया गया कि वे अपना वकील सेंटपीटर्सबर्ग को भेजें, रूस से बाला बाला पत्र-व्यवहार करें और चीन की आधीनता छोड़ कर स्वतन्त्रता पूर्वक रूस से सम्बन्ध रक्खें। लामा ने यह बात मंजूर की। सन्निद नामक एक प्रसिद्ध महन्त वकील बनाया गया। घोमंग के साथ वह सेंटपीटर्सबर्ग गया। उसने

लामा का दस्तख़ती पत्र ज़ार को दिया। लामा की बहुत सी शर्तें रूस ने मंज़ूर कर लीं और एक सन्धिपत्र भी लिखा गया; परन्तु यह बात जब चीन को मालूम हुई तब उसने रूस और तिबत की उस कारस्वाई को रद कर दिया और तिबत पर अपनी सख्त अप्रसन्नता प्रकट की। अतएव वह बात वहीं रह गई; आगे नहीं बढ़ी। चीन की आज्ञा के बिना तिबत किसी परकीय राजा से सन्धि नहीं कर सकता।

घोमंग का क़िस्सा कहां तक सच है नहीं मालूम। परन्तु रूस के बने हुए शस्त्र जो मिशन को युद्धस्थल में मिले हैं और तिबतियों की युद्ध पटुता जो इस समय देख पड़ रही है, उससे सूचित होता है कि रूस से तिबत का कुछ न कुछ सम्बन्ध, यदि है नहीं, तो रहा अवश्य है।

[अगस्त १९०४]



नेपाल ।

नेपाल की गिनती उन राज्यों में है जो स्वाधीन गिने जाते हैं। पर जैसे हैदराबाद, मैसूर और काश्मीर इत्यादि राज्यों में अंगरेज़ों का रेज़ीडेंट रहता है वैसे ही नेपाल में भी रहता है। यह देश कोई ५०० मील लम्बा और १२० मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल कोई ६०,००० वर्ग मील है। हिमालय के दक्षिणी भाग की दो चोटियों के बीच कोई १५ मील लम्बा और उतनी ही चौड़ी समतल जगह है। नेपाल वाले उसीको नेपाल कहते हैं। पर और देशवाले गोर्खा लोगों के सारे देश को नेपाल कहते हैं। नेपाल का कुछ ही हिस्सा ऐसा है जहाँ विदेशी जाने पाते हैं। नेपाली लोग विदेशियों को अपने देश में बेरोकटोक सब कहीं न कहीं जाने देते। यह सिद्धान्त यूरप वालों को पसन्द नहीं, क्योंकि इसके कारण झगड़े की जड़ पादरी साहब का प्रवेश वहां नहीं होता।

नेपाल बिलकुल पहाड़ी देश है। हिमालय की सब से ऊँची चोटी अवरिष्ट (२९, ०० २ फुट) नेपाल ही की सीमा के भीतर है। उसका नेपाली नाम दूध-गङ्गा है। नेपाल की हद का उत्तरी हिस्सा ऐसा है जहाँ बहुत करके साल भर वर्फ जमा रहता है। वह कभी नहीं गलता; थोड़ा बहुत बना ही रहता है। नेपाल की राजधानी काठमांण्डू में है। वह समुद्र की सतह से कोई ४, ००० फुट की ऊँचाई पर है। नेपाल का दक्षिणी हिस्सा हिन्दुस्तान से मिला हुआ है। उसे तराई कहते हैं। वहाँ को ज़मीन नीची है। उसमें सघन जङ्गल हैं और साल, शीशम इत्यादि बहुत पैदा होता है। जहां जङ्गल नहीं है वहां खेती होती है। दक्षिणी हिमालय की नन्दा देवी, धवलगिरि, दयाभङ्ग और काञ्चन-गङ्गा आदि चोटियाँ भी नेपाल ही के अन्तर्गत हैं।

घाघरा, कोसी और गण्डक आदि नदियाँ नेपाल से होकर बहती हैं। ये नदियाँ बहुत बड़ी हैं। इनके बीच का सारा पहाड़ी देश नेपाल के राज्य में शामिल है। इनमें से एक एक नदी में सात सात आठ आठ नदियाँ और आकर गिरतीं हैं। उनमें काली, श्वेत गङ्गा, रावती, नारायणी और दूधकोसी मुख्य हैं। नेपाल में पहाड़ों की भी कमी नहीं। और नदिओं की भी नहीं। पहाड़ों की तो बात ही क्या? सारा नेपाल ही पर्वतमय है। पर नदियाँ भी बीस पचीस से कम नहीं।

नेपाल की आबोहवा एक सी नहीं। जो जगह जितनी ऊँची है उसकी आबोहवा उतनी ही अधिक ठण्ढी है। नेपाल के तीन भाग किये जा सकते हैं। उत्तरी, दक्षिणी और बीच का। मैदान की जमीन से उत्तरी हिस्सा १०, ००० से २९, ००० फुट तक ऊँचा है और

दक्षिणी हिस्सा सिर्फ ४,००० फुट तक। पहाड़ी ज़मीन, जिसमें थोड़ी बहुत खेती होती है, साल के जङ्गल और तराई इसी दक्षिणी हिस्से में शामिल हैं। बीच का हिस्सा मैदान से ४,००० फुट से लेकर १०, फुट तक ऊँचा है। हर हज़ार फुट की ऊँचाई पर कोई तीन अंश सरदी अधिक बढ़ती है। पर पश्चिम की तरफ का देश कम सर्द है। वहाँ पानी भी कम बरसता है; क्योंकि बादल ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को पार नहीं कर सकते; इसी तरफ़ रह जाते हैं।

ख़ास नेपाल अर्थात् वह भाग जो पहाड़ों के बीच, दरी के रूप में है, बहुत तर है। इसी भाग में काठमण्डू है। वहाँ की ज़मीन अत्यन्त उर्वरा है। वहाँ धान ख़ूब होता है। जो ज़मीन कुछ ऊँची है उसमें गेहूं होता है। पहाड़ों के पास की ज़मीन सब से अच्छी है। वहाँ धान भी होता है और गेंहू भी। कहीं कहीं एक साल में दो दो तीन तीन फसलें होती हैं।

नेपाल में अक्तूबर से मार्च तक सर्दी रहती है और जनवरी-फ़रवरी में सख्त जाड़ा पड़ता है। अप्रैल से सितम्बर तक की आबोहवा तर रहती है; गरमी अधिक नहीं पड़ती। मार्चसे मई और सितम्बर से दिसम्बर तक का मौसम बहुत अच्छा होता है। जून, जूलाई और अगस्त में वर्षा होती है;

नेपाल में कई जाति के आदमी बसते हैं। उनमें से भोटिया, मगर, गुरुँग, नेवार, किराती, लेपचा और लिम्बू मुख्य हैं। भूटान की तरफ़ बहुत ऊँची जगहों में भोटिया लोग रहते हैं। वे तिब्बत की भाषा

बोलते हैं। उनके कपड़े-लत्ते, चाल-ढाल, रीति-रवाज और शकल-सूरत तिबत वालों से मिलती है। नेपाल के बीच में, पश्चिम की तरफ़, कम ऊँची पहाड़ियों पर मगर और अधिक ऊँची पहाड़ियों पर गुरूँग जाति के लोग रहते हैं। नेवार लोग खास नेपाल की दरी में, और किराती और लिम्बू नेपाल के पूर्व रहते हैं। लेपचा जाति के लोग सिकम के पास की पहाड़ियों पर रहते हैं। इन सब की गिनती मंगोलियन शाखा के आदमियों में हैं, अर्थात् मंगोलिया में रहने वालों की शकल-सूरत जैसी होती है उससे इन लोगों की शकल-सूरत मिलती है। इनके सिवा नेपाल में एक और जाति के आदमी रहते हैं। वे पार्वती या पर्वतिया कहलाते हैं। तेरहवीं सदी में हिन्दुस्तान से जो लोग भाग कर नेपाल चले गये थे। उनके और पहाड़ी स्त्रियों के समागम से इन लोगों की उत्पत्ति हुई है। मगर, गुरूँग और पर्वतिया जाति वालों के समूह का नाम गोर्खा या गोर्खाली है। बङ्गाल के भूतपूर्व लफ्टिनेंट गवर्नर, और बम्बई के गवर्नर, सर रिचर्ड टेम्पल का यह मत है। उन्होंने एक किताब लिखी है। उसी में आपने अपना यह मत प्रकाशित किया है। नेपाल में काठमण्डू से ४० मील पश्चिम की तरफ़ गोर्खा नाम का एक शहर है। उसीके नाम पर गोर्खा लोगों का नाम पड़ा है। नेपाल की दरी में जो लोग रहते हैं, उनमें नेवार जाति वालों की संख्या सब से अधिक है। नेपाल में पहले इन्हीं लोगों का प्रभुत्व था। ७६८ ईसवी के लगभग गोर्खा लोगों ने नेपाल में अपना राज्य स्थापित किया। चपाँग, कुसूंदा और अवालिया लोग भी नेपाल के भीतरी जङ्गलों और तराइयों में रहते हैं।

ये लोग वहाँ के आदिम निवासी हैं और हिन्दुस्तान के गोंड, भील और सौंताल आदि की तरह असभ्य और जङ्गली हैं।

पहले नेपालियों में गोत्र या कुल का भेद न था। पर जब से हिन्दुस्तानियों ने नेपाल में क़दम रक्खा और धीरे-धीरे पर्वतिया जाति की उत्पत्ति हुई तब से यह चाल भी वहां हो गई। पर्वतिया लोगों में थापा, बिसनायत, भण्डारी, अधिकारी, कार्की और दानी इत्यादि कुल भेद प्रचलित हैं। इन लोगों के सम्पर्क से मगर लोगों में राना और थापा आदि भेद हो गये हैं। पर गुरूँग जाति में इस भेद-भाव का अभी तक प्रचार नहीं हुआ।

गोर्खा लोग पर्वतिया भाषा बोलते हैं। वह संस्कृत से निकली है। जब से हिन्दुस्तानियों का प्रवेश नेपाल में हुआ तभी से इस भाषा की नीव वहाँ पड़ी। नेपाल के पुराने प्रभु नेवार लोगों की भाषा और ही है। उसका नाम नेवारी है। और और जाति वालों में से कुछ तो तिबत की भाषा बोलते हैं और कुछ सिकम और भुटान की।

गोर्खा लोग हिन्दू धर्म्म के अनुयायी हैं। नेवार लोगों में से कुछ हिन्दू हैं और कुछ बौद्ध। जो हिन्दू हैं वे शैवमार्गी नेवार कहलाते हैं और जो बौद्ध हैं वे बौद्ध मार्गी नेवार। पर सच पूछिए तो बौद्धमार्गी नेवारों का ठीक ठीक कोई धर्म्म ही नहीं। वे हिन्दुओं के देवी-देवताओं को भी पूजते हैं। और बुद्ध को भी पूजते हैं। लिम्बू, किराती, भोटिया और लेपचा भी बौद्ध हैं। नेपाल में व्यापार, कारीगरी और कृषि प्रायः नेवार लोगों ही के हाथ में है।

नेपाल में साधारण आदमियों का भोजन चावल और तरकारी

है। जो समर्थ हैं वे मांस भी खाते हैं। हिरन और जङ्गली सूअर भी लोग खाते हैं। नेवार और गुरूँग जाति के आदमी भैंस तक खाते हैं। इस देश की तरह नेपाल में भी लोग खूब बहुविवाह करते हैं। जो धनी हैं उनको एक से अधिक स्त्रियां रखने का अकसर शौक होता है। पर विधवा-विवाह का निषेध है! नेपाल में सती की चाल अभी तक बनी हुई है। जब नेपाल के प्रसिद्ध मन्त्री जङ्ग-बहादुर की मृत्यु हुई तब उनकी रानी उनके मृत शरीर के साथ सती हो गईं। गोर्खा लोगों में व्यभिचार बहुत निषिद्ध है। इसके लिए स्त्री और पुरुष दोनों को कठिन दण्ड दिया जाता है। पर नेवार लोगों में विवाह-बन्धन और व्यभिचार आदि का विचार उतना कड़ा नहीं। किसी किसी का मत है कि नेवार जाति की स्त्रियाँ कभी विधवा ही नहीं होतीं।

नेपाल की फौज में पर्वतिया, मगर और गुरूँग लोग ही अधिकता से भरती किये जाते हैं। पर इस देश की अँगरेजी गोर्खा पलटनों में और जाति के आदमी भी ले लिये जाते हैं। वे सभी गोर्खा कहलाते है। गत एप्रिल में जो भूकम्प हुआ था, उसने धर्म्मशाला में इसी गोर्खा जाति की एक अंगरेजी पलटन के डेढ़ दो सौ आदमियों का संहार कर डाला था। ये लोग बड़े बहादुर होते हैं। इनकी बहादुरी पर गवर्नमेंट बहुत खुश है। इसीसे लार्ड किचनर ने बहुत सा चन्दा इकट्ठा करके मृत गोर्खा लोगों के कुटुम्बियों की सहायता की है। जनरल सेल हिल बहुत दिनों तक एक गोर्खा पल्टन में रहे हैं। वे कहते हैं कि गोर्खा लोग बड़े बहादुर, श्रम-सहिष्णु, आज्ञाकारी, स्वच्छ-हृदय, स्वाधीन-चेता और आत्मावलम्बी होते हैं। अपने मुल्क

में वे विदेशियों को नहीं घुसने देते ; उनसे द्वेष करते हैं। वे अपनी स्त्रियों को बहुत अच्छी तरह रखते हैं। इसीसे स्त्रियां भी उनकी खूब सेवा-शुश्रूषा करती हैं। पर ये लोग ज़रा कुन्दज़ेहन होते हैं और कवायद परेड सीखने में अधिक दिन लगाते हैं। जब ये फौज में भरती होते हैं तब बहुत मैले रहते हैं। इसलिए पहले इनको सफ़ाई पर सबक़ देना पड़ता है। इनमें जुआ खेलने की बुरी आदत होती है। पहाड़ी मुल्क में पैदल सिपाहियों के काम में कोई इनकी बराबरी नहीं कर सकता। इनका स्वदेशी हथियार खुड़की है।

नेपाल में गुलामी की चाल अभी तक जारी है।* वहाँ प्रायः सब समर्थ आदमियों के यहाँ गुलाम रहते हैं गुलाम की कीमत कोई १५० रुपये तक होती है। स्त्रियाँ भी गुलाम का काम करती हैं। उनकी क़ीमत कुछ अधिक देनी पड़ती है। सुनते हैं, गुलाम स्त्रियों का चाल-चलन अच्छा नहीं होता। गुलामों के मालिक अपने गुलामों के साथ अच्छा वर्ताव करते हैं।

नेपाल में प्रजा की शिक्षा का अच्छा प्रवन्ध नहीं है। धनवान आदमी अपने लड़कों को प्रायः घर ही पर शिक्षक रख कर पढ़ाते हैं। नेपाल से लड़के इस देश में भी विद्याध्ययन के लिए अकसर आते हैं। नेपाल में भाषा-साहित्य का प्रायः अभाव ही है। पर संस्कृत के अनन्त अलभ्य ग्रन्थ वहाँ विद्यमान हैं। काठमाण्डू में जो राजकीय पुस्तकालय है, उसकी महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बहुत प्रशंसा की है। कई विद्वान् अंगरेज़ और हिन्दुस्तानी महीनों उसकी पुस्तकों की सूची

* अब यह बन्द हो गई है।

बनाते रहे ; परन्तु पूरी नहीं बना पाये। जो सूची आज तक प्रकाशित हुई है, उसमें हजारों ग्रन्थ ऐसे हैं जो और कहीं प्रायः अलभ्य हैं। उनमें से अनेक ऐसे हैं जिनके नाम तक नहीं सुने गये थे। कितने ही ग्रन्थ युद्धविद्या, पशु-चिकित्सा और गृह-निर्माण पर वहां हैं।

नेपाल की मनुष्य-संख्या ठीक ठीक नहीं मालूम। नेपाल वाले कहते हैं कि उनके देश में बावन लाख आदमी रहते हैं। पर विदेशी यात्रियों का अनुमान है कि वहाँ की आवादी इससे कम है।

नेपाल में चार मशहूर शहर हैं—काठमाण्डू, पाटन, कीर्तिपुर और भटगाँव।

काठमाण्डू वागमठी और विष्णुमती नदियों के सङ्गम पर बसा है। उसकी आवादी ५०,००० के करीब है। मकान कई मंजिले हैं। महाराजाधिराज का राजभवन शहर के वोच में है। वहां अच्छी सड़कें कम है। शहर में सफ़ाई कम रहती है। गली गली में मन्दिर है। एक साहब ने लिखा है कि काठमाण्डू में आदमी कम हैं, मन्दिर अधिक! मन्दिरों में बत्तखों, बकरों और भैंसों का बलिदान होता है। वहाँ एक मन्दिर बहुत मशहूर है। उसका नाम तलेजू है। एक बाज़ार भी वहाँ बहुत अच्छा है। वह काठमण्डू-टोल कहलाता है। महाकाल का पुराना मन्दिर और रानी-पोखरी नाम का तालाब भी वहाँ मशहूर है।

पाटन का दूसरा नाम ललित पाटन है। वह काठमण्डू से दो ही तीन मील दूर है। वह बहुत पुराना शहर है। उसकी आवादी ६०,००० के क़रीब है। यह शहर पहले बहुत अच्छी हालत में था। पर जब गोर्खा लोगों ने नेपाल ;ज्सूका ।र-ष्ठत्र नेव। लोगों से छीना तब

उन्होंने इस शहर को छिन्न भिन्न कर डाला। इसमें भी अनेक मन्दिर हैं। यहाँ बौद्ध लोगों के चैतन्य और विहार भी बहुत से हैं। मत्स्येन्द्र-नाथ और महाबुध के बहुत पुराने स्थान यहाँ हैं। यहाँ का दरबार नामक प्रासाद बहुत ही अच्छी इमारत है।

कीर्त्तिपुर एक छोटा सा क़स्बा है। उसमें सिर्फ पांच छः हज़ार आदमी रहते हैं। गोर्खा लोगों ने राज्य क्रान्ति के समय इसे बे-तरह विध्वस्त कर डाला था। तब से यह बुरी दशा में है। इसमें भैरव और गणेश के मन्दिर अवलोकनीय हैं।

भटगाँव काठमाण्डू से ७ मील है। इसकी आबादी कोई पचास हज़ार के क़रीब है। नेपाल में इस शहर की बस्ती सब से अधिक घनी है। देखने में भी यह बहुत सुन्दर है और साफ़ भी यह अधिक है। भटगाँव का दरबार नामक प्रासाद पहले बहुत बड़ा था। अब भी वह देखने लायक है। उसमें एक विशाल फाटक है। उसे लोग "सोने का फाटक" कहते हैं। यह फाटक बहुत प्रसिद्ध है। इसके शिल्पकार्य की फ़रगुसन साहब ने बड़ी प्रशंसा की है। भवानी, भैरव और गणेश के कई मन्दिर यहाँ हैं।

नेपाल में गोर्खा भी एक मशहूर शहर है। पर अब उसकी उतरती कला है। जिस समय गोर्खा लोगों का वह प्रधान शहर था उस समय उसकी शोभा कुछ और ही थी। उसमें कोई इमारत देखने लायक नहीं। पर अब भी उसमें कोई दस हज़ार आदमी बसते हैं।

काठमाण्डू से तीन मील पर पशुपतिनगर नाम का एक क़सबा है। वह बागमती नदी के किनारे बसा हुआ है। वहां पशुपतिनाथ का

प्रसिद्ध मन्दिर है। मन्दिर बहुत बड़ा है। उसके पास कोई योरप निवासी नहीं जाने पाता। पशुपति नगर नेपालियों की काशीपुरी है। मरने के समय लोग वहीं रहने जाते हैं।

नेपाल की सालाना आमदनी एक करोड़ रुपया है। पर सर रिचर्ड टेम्पल साहब को इस पर विश्वास नहीं। आप कहते हैं कि इतनी आमदनी नहीं है; यह बढ़ा कर बतलाई गई है।

नेपाल में २०, ००० फ़ौज हमेशा तैयार रहती है। वह कई पलटनों में बँटी हुई है। पर नेपाल एक ऐसा देश है जहाँ के सभी मनुष्य हथियार उठाना और लड़ना जानते हैं। उन सब को नियत समय तक युद्ध-विद्या सिखलाई जाती है और जरूरत पड़ने पर वे सब अपने देश की रक्षा के लिए लड़ाई पर भेजे जा सकते हैं। ज़रूरत के समय नेपाल कोई सत्तर अस्सी हज़ार फ़ौज इकठ्ठा कर सकता है। फ़ौज को अँगरेज़ी तरह की क़वायद सिखलाई जाती है। सब को एक विशेष प्रकार की वर्दी पहनना पड़ता है। सिपाही सिर पर फेंटा बाँधते हैं। अफसरोंके फेटों पर कलँगी, जवाहिरात और चिड़ियोंके सुन्दर सुन्दर पंख लगे रहते हैं। फौज के बड़े अफसरों की पोशाक और ही तरह की होती है।

नेपाल में मेगज़ीन, सिलहख़ाने और दो तीन तरह के तोपख़ाने भी हैं। कुछ फ़ौज के पास अँगरेज़ी और कुछ के पास देशी हथियार हैं। पर खुकड़ी हर सैनिक के पास रहती है। गनफील्ड राइफल के नमूने की बन्दूकें भी नेपाल में बनती हैं। नेपाली फ़ौज कवायद-परेड में बहुत होशियार है। उसकी बहादुरी की तो बात ही क्या? गोर्खा सिपाही संसार में प्रसिद्ध हैं। नेपाल में रिसाला अच्छा नहीं। इस

बात की वहाँ कमी है। पर हाथी अनेक हैं। दूसरे सभ्य देशों ने नये नये शस्त्र बनाने और युद्ध विद्या में उन्नति करने के इरादे से नये नये आविष्कारों की सृष्टि की है। पर इन बातों में नेपाल बहुत पीछे है। अतएव योरप के किसी सभ्य देश की सेना के सामने नेपाल की सेना अधिक देर तक नहीं ठहर सकती। सर टेम्पल अपनी किताब के पढ़ने वालों से कहते हैं कि ये बातें याद रखने लायक हैं।

नेपाल में एक अँगरेज़ी दूत रहता है। उसे रेज़िडेंट कहते हैं। उसीकी मारफ़त नेपाल राज्य और हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट में, आवश्यकतानुसार, लिखा-पढ़ी होती है। अँगरेज़ी वनिज-व्यापार का वही रक्षक है। रेज़िडेंट साहब का वहां अच्छा रोब है। उनको ताज़ीम देने के लिये नेपाल के महाराजाधिराज तक अब उठ खड़े होने लगे हैं। गत एप्रिल में एक दरबार हुआ था। उसमें नेपाल नरेश ने अपने आसन से उतर कर रेज़िडेंट की अभ्यर्थना की थी। नेपाल-नरेश महाराजधिराज कहलाते हैं और उनके मन्त्री महाराज। वहाँ मन्त्री ही राज्य के कर्ता, हर्ता और विधाता हैं।

नेपाल का राज्य बहुत पुराना है। वहाँ कलियुग के भी पहले जो राजा हुए हैं उनका पता नेपाली पुस्तकों में लगता है। पहले नेपाल में नेवार-जाति की प्रभुता थी। नेपाल की दरी में इसी जाति के चार छोटे छोटे राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानियां काठमाण्डू, पाटन, कीर्तिपुर और भटगाँव में थी। भटगाँव को छोड़ कर ये सब शहर एक दूसरे से सिर्फ चार चार पाँच पाँच मील के फासले पर हैं। सिर्फ भटगाँव काठमाण्डू से ७ मील है। तेरहवीं सदी में मुसलमानों के

अत्याचार से तङ्ग आकर उदयपुर के राजघराने के कुछ क्षत्रिय कमाऊं की तरफ़ चले गये। उनके साथ और भी कितने ही क्षत्रिय, सेवक और सहचर की भाँति, गये। कोई तीन सौ वर्ष तक उन लोगों की सन्तति वहाँ रहती रही और धीरे-धीरे नेपाल की तरफ़ बढ़ती रही। सोलहवीं सदी में द्रव्यशाह नामक एक पुरुष विशेष प्रतापी हुआ। उसने गोर्खा-नगर को उसके राजा से छीन लिया और आप वहाँ का राजा हो गया। तभी से गोर्खा-राजों के राज्य का सूत्रपात हुआ। अठारवीं सदी के उतरार्द्ध में पृथ्वी नारायण सिंह को गोर्खा की गद्दी मिली। कुछ दिन बाद पाटन, काठमण्डू और भटगाँव के नेवार-राजों में परस्पर विरोध पैदा हुआ। इससे भटगाँव के राजा रञ्जीतमल ने पृथ्वीनारायण शाह से मदद माँगी। इस मदद का फल यह हुआ कि तीन चार वर्ष में पृथ्वीनारायण सिंह ने युद्ध करके, कुटिल नीति से काम लेकर और शत्रुओं में परस्पर द्वेष भाव उत्पन्न करा के नेपाल के चारों राज्यों को उद्ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार निष्कण्टक होकर आपने नेपाल का प्रभुत्व अपने ऊपर लिया और गोर्खा छोड़ कर काठमाण्डू को अपनी राजधानी बनाया। तब से नेवार-जाति की प्रभुता की समाप्ति हो गई और गोर्खा लोग नेपाल के राजा हुए। इन्हीं गोर्खाओं के वंशज अब तक वहाँ राज कर रहे हैं। १७६८ ईसवी में पृथ्वीनारायण सिंह को नेपाल की गद्दी मिली। उनसे लेकर १८४७ ईसवी तक इतने राजे नेपाल में हुए—पृथ्वीनारायण शाह, प्रतापसिंह शाह, रणबहादुर शाह, गीर्वाण युद्ध विक्रम शाह, राजेन्द्र विक्रम शाह और सुरेन्द्र विक्रम शाह।

पृथ्वीनारायण-शाह ने धीरे-धीरे किराती और लिम्बू लोगों का

भी राज्य छीन लिया और रणबहादुर-शाह ने नेपाली राज्य को कुमाऊं तक बढ़ाया। १७९२ ईसवी में नेपालियों ने तिबत पर चढ़ाई की, पर चीन वालों ने उन्हें वहाँ से भगा दिया। इस चढ़ाई में उन्हें बहुत हानि उठानी पड़ी और अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ा। तभी से नेपाल वाले चीन को कर देने लगे। यह कर उन्हें अब तक देना पड़ता है। उस समय तिबत वालों ने भी अंगरेज़ों से मदद माँगी थी और नेपाल वालों ने भी ; पर इस्ट इण्डिया कम्पनी ने मदद नहीं दी। यदि देती तो इस समय नेपाल और तिबत की हालत और की और ही हो गई होती। नेपाल की राजगद्दी के कारण अनेक बार मार काट हुई है। सच पूछिए तो मन्त्री ही वहाँ का राजा है। इस लिए मन्त्री होने के लिए अनेक खून-खराबियाँ हुई हैं और कितने ही लोगों को देश छोड़ कर हिन्दुस्तान में भाग आना पड़ा है।

गीर्वाण युद्ध विक्रम-शाह के समय में गोर्खा लोगों ने फिर नेपाल की सीमा का बढ़ाना आरम्भ किया। पश्चिम में वे काँगड़ा तक पहुँच गये और पूर्व में सिक्कम तक। उन्होंने अंगरेज़ी राज्य पर भी आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि १८१४ ईसवी में नेपाल के साथ अँगरेज़ों का युद्ध ठन गया। इस युद्ध में पहले अँगरेज़ों को बहुत तकलीफें उठानी पड़ीं। उनकी सेना का भी बहुत नाश हुआ और उनके कई बड़े बड़े अफसर भी मर गये। पर पीछे से उनकी कामयाबी हुई और अँगरेज़ों का जितना देश नेपालियों ने जीता था उसमें से बहुत सा उन्होंने लौटा दिया। नेपाल के साथ अँगरेज़ों की पहले दो तीन सन्धियाँ हो चुकी थीं। पर वे नाम मात्र ही के लिये

थीं। जब नेपाल के साथ अँगरेजों की लड़ाई हुई तब नेपालियों को अँगरेजों का बल विक्रम अच्छी तरह मालूम हो गया। तब, १८१६ ईसवी में, चौथी बार सन्धि हुई। इस सन्धि का नाम सिगौली की सन्धि है। तब से अँगरेजी गवर्नमेन्ट की तरफ से एक रेज़िडेण्ट मुस्तकिल तौर पर काठमाण्डू में रहने लगा। उस समय नेपाल-नरेश के मन्त्री जेनरल भीमसेन थापा थे। उन्होंने २५ वर्ष तक काम किया। १८३७ ईसवी में उन पर यह अपराध लगाया गया कि उन्होंने राजा के एक छोटे बच्चे को विष दिया। इसलिए वे कैद किये गये और कैद ही में उन्होंने अपना आत्मघात किया। सुनते हैं, उनके मृतक शरीर की बड़ी दुर्दशा की गई थी।

भीमसेन थापा के बाद कालापांडे को नेपाल नरेश का मन्त्रित्व मिला। उनका राज्य-प्रबन्ध अच्छा न था। १८४३ ईसवी में उनको मातबरसिंह नामक एक योद्धा ने मार डाला और आप मन्त्री हो गया। परन्तु दो ही वर्ष में उसका भी काम तमाम कर दिया गया। वह राजा से मिलने गया था। वहीं उस पर किसी ने गोली चलाई। कोई कहता है, खुद राजा ने चलाई; कोई कहता है जङ्गबहादुर ने।

जङ्गबहादुर एक बहुत ही होनहार और साहसी युवा थे; उस समय वे फ़ौज में कर्नल पद पर थे। मातबरसिंह के मारे जाने पर उन्होंने राज्य कार्य देखना शुरू किया। पर मन्त्रित्व उनको न मिला। वह गगनसिंह नामक एक पुरुष को मिला। परन्तु एक ही वर्ष बाद उनके जीवन की भी समाप्ति हो गई। १४ सितम्बर १८४६ की शाम को यह घटना हुई। उन पर नेपाल की महारानी की कृपा थी। इसलिए

उनके वधिक का पता लगाने के लिए सब सरदार राजमहल में बुलाये गये। वहां जंगबहादुर भी उपस्थित थे। बातों बातों में झगड़ा हुआ और गोलियां चलने लगीं। ज़रा देर में नेपाल के ३१ सरदार और कोई सौ आदमी राजमहल के भीतर ही मारे गये। खून की नदी बह निकली। राजा और रानी भयभीत होकर बनारस भाग आये। जङ्ग-बहादुर के लिए रास्ता साफ हो गया। इसलिए आप निष्कण्टक होकर मन्त्रित्व के आसन पर आसीन हुए। आपने सुरेन्द्रविक्रम शाह को राजा बनाया।

जङ्गबहादुर के पूर्वजों ने नेपाल में अच्छे-अच्छे काम किये थे। वे एक मशहूर घराने के थे। उन्होंने राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया। उनके कोई सौ लड़के लड़कियां थीं। उनका सम्बन्ध राज्य के प्रधान प्रधान सरदारों और स्वयं महाराजाधिराज के यहाँ करके, जङ्गबहादुर ने सारे राज-चक्र और सरदार-चक्र को अपने हाथ में कर लिया। उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह नेपाल के युवराज से भी कर दिया। १८५० ईसवी में जङ्गबहादुर इँगलैण्ड गये। वहाँ उनकी बहुत खातिरदारी हुई। इँगलैण्ड में उन्होंने अँगरेजी सभ्यता को ध्यान से देखा और अँगरेज़ों के प्रचण्ड प्रताप का भी अच्छी तरह अनुभव किया। फल यह हुआ कि नेपाल लौट कर उन्होंने अपने देश के कानून में उचित फेरफार किये उन्होंने अङ्ग-भङ्ग करने का दण्ड उठा दिया। सती की प्रथा में भी कुछ रुकावट कर दी गई। सेना में भी सुधार किया गया। सारांश यह कि जङ्गबहादुर ने जिसमें प्रजा और देश का कल्याण समझा उसे करने में सङ्कोच नहीं किया।

बिलायत से लौटने पर लोगों ने उन पर यह दोष लगाया कि समुद्र पार जाने से वे धर्मच्युत हो गये। इससे वे मन्त्री होने लायक नहीं रहे। इन दोषारोपण करने वालों में जङ्गबहादुर के दो भाई भी थे—एक सगे, एक चचेरे। इसमें महाराजाधिराज के एक भाई भी शामिल थे। ये लोग नेपाल से हटा दिये गये और इलाहाबाद में आकर रहने लगे। पर १८५३ ईसवी में उनको नेपाल लौट जाने की आज्ञा मिल गई। १८५७ ईसवी के सिपाही-विद्रोह में जङ्गबहादुर ने बहुत सी फौज भेज कर अँगरेज़-राज की मदद की। इसके उपलक्ष में गवर्नमेंट ने तराई का एक हिस्सा नेपाल को दे दिया और जंगबहादुर को जी० सी० बी० की पदवी से विभूषित किया। १८७३ ईसवी में वे जी० सी० एस० आई० बनाये गये। १८७७ में जंगबहादुर की मृत्यु हुई। अपने समय तक यही एक ऐसे मन्त्री हुए जिनकी स्वाभाविक मृत्यु हुई। महाराज जंगबहादुर के ज्येष्ठ पुत्र जनरल पद्मजङ्ग इस समय प्रयाग में रहते हैं।

१८७५ ईसवी में राजराजेश्वर सातवें एडवर्ड सैर के लिए हिन्दुस्तान आये थे। उस समय आप "प्रिंस आव् वेल्स" कहलाते थे। आपने नेपाल की तराई में शिकार खेला था। शिकार का सब प्रबन्ध महाराज जङ्गबहादुर ने खुद किया था। वे प्रिंस से मिलने आये थे उनके आतिथ्य से प्रिंस बहुत प्रसन्न हुए थे।

महाराज जङ्गबहादुर का शंखे लामा नामक एक योगी पर बहुत प्रेम था। इस योगी को व्रजोली मुद्रा सिद्ध थी। वह अपने शिश्न से शंख बजा सकता था और उसी मार्ग से कटोरा भर दूध चढ़ा लेता था

१८८५ ईसवी में नेपाल के सरदार मण्डल में फिर विद्रोह हुआ। उसमें उस समय के मन्त्री, और जङ्गबहादुर के एक बेटे और एक पोते की जान गई। विद्रोह-कर्ता थे वीर शमसेर जङ्ग राना। शिरच्छेद करने में राक्रम दिखला कर आपने मन्त्री का आसन छीन लिया। तब से आप नेपाल के हर्ताकर्ता हुए। आपको के० सी० एस० आई० का खिताब भी मिला।

नेपाल के वर्तमान नरेश, महाराजाधिराज, और मन्त्री दोनों बहुत योग्य हैं। गत वर्ष तिबत-मिशन को नेपाल से बहुत मदद मिली थी। इस उपलक्ष्य में अँगरेज़ी गवर्नमेण्ट ने मन्त्रीजी को जी० सी० एस० आई० की उपाधि से अलंकृत किया है। २६ अप्रिल, १९०५, को काठमाण्डू में एक दरबार किया गया। उसमें महाराज चन्द्रशमशेर जङ्ग राना बहादुर को रेज़िडेंट साहब ने इस पदवी का सूचक पदक पहनाया। यही राना बहादुर आज कल नेपाल के मन्त्री हैं। दरबार में महाराजाधिराज भी पधारे थे। आपने रेज़िडेंट साहब की अभ्यर्थना उठ कर की थी और एक वक्तृता भी दी थी। आप की वक्तृता को आपके राज-गुरू ने पढ़ कर सुनाया था।

नेपाल के वर्तमान नरेश महाराजाधिराज पृथ्वी वीर विक्रम-शमशेर जङ्गबहादुर शाह का जन्म ८ अगस्त, १८७४, को हुआ था। १७ मार्च १८८१, को आप अपने पितामह की गद्दी पर बैठे थे। आप बहुत रूपवान और गुणवान हैं। आप अँगरेज़ी खूब लिख पढ़ सकते हैं और बोलते भी हैं। आप महाराज जङ्ग बहादुर के दौहित्र हैं।

[जुलाई १९०५]

बल्गारिया ।

यूरप के दक्षिणी भाग में बालकन नाम का एक प्रायद्वीप है। यह प्रदेश कई छोटे छोटे राज्यों में विभक्त है। उनके नाम हैं—ग्रीस, सर्विया, बल्गारिया, बासनिया, हर्ज़गोबिना, रोमानिया और अलबानिया। टर्की का जो भाग योरप में है वह भी इसी के अन्तर्गत है। पहले ये सब टर्की के आधीन थे। किन्तु धीरे धीरे ये स्वतन्त्र हो गये हैं। बासनिया और हर्ज़गोविना को आस्ट्रिया ने छीन लिया है। अलबानिया में अराजकता है। अन्य राज्य सुधरी हुई राजतन्त्र-प्रणाली से शासित होते हैं। इन राज्यों में ईसाई, मुसल्मान और यहूदी सभी धर्म्मों के अनुयायियों का निवास है।

बल्गारिया को टर्की से स्वतन्त्र हुए, अभी बहुत समय नहीं हुआ। तथापि इतने ही समय में उसने बहुत उन्नति कर ली है। बल्गारिया का राज्य टर्की के उत्तर है। उसका क्षेत्र-फल कोई ३८ हज़ार वर्ग मील और आबादी कोई ५० लाख है।

बलगारिया ने व्यापार-व्यवसाय, कृषि, शिल्प, उद्योग-धन्धा, शिक्षा आदि की खूब उन्नति की है। राज्य बारह विभागों में विभक्त है। हर विभाग के शासन के लिए एक एक अफ़सर नियत है। वह मन्त्रिमण्डल की सम्मति से नियुक्त किया जाता है। समग्र देश-शासन के लिए वहां एक सभा है। प्रजा के चुने हुए मुखिये उसके मेम्बर होते हैं। वही क़ानून बनाते हैं। वही राज्य-सञ्चालन की प्रधान व्यवस्था करते हैं। उन्हीं के बनाये हुए नियम और कानून जारी होते हैं। राजकीय प्रवन्ध के लिए आठ मन्त्रियों की एक कौंसिल है। प्रजा के प्रतिनिधियों की सूचना और सम्मति के अनुसार यही कौंसिल राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी सारा काम करती है।

बलगारिया के अधिकांश निवासी कृषिजीवी हैं। प्रायः सारा कृषि-कार्य कृषक के कुटुम्बियों ही को करना पड़ता है। किन्तु वे लोग शिक्षा का महत्व समझते हैं। इस कारण बड़ी खुशी से वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। सारडोवो और रोस्वाउक नगरों में एक एक कृषि-विद्यालय है। इन विद्यालयों में कृषि-सम्बन्धी हर प्रकार की उपयोगिनी शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त फिलिपोपोलिस नगर में कृषि-विषयक एक बड़ा स्कूल भी है। बलगारिया में पादड़ी लोग और देहाती स्कूलों के अध्यापक भी कृषि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वाध्य किये जाते हैं। फल यह हुआ है कि देश में कृषि बहुत अच्छी दशा में है।

बलगारिया की राजधानी सोफ़िया में एक बड़ा विश्वविद्यालय है। उसमें ऊँचे दर्जे की शिक्षा दी जाती है। १७०० युवक और ३००

युवतियां उसमें शिक्षा ग्रहण करती हैं। उसमें लगभग ६० अध्यापक शिक्षादान का कार्य करते हैं। देश के समग्र शिक्षालयों की संख्या ५,४५० है। उनमें कोई १३,५०० अध्यापक काम करते हैं। सब विद्यार्थियों की संख्या ५,३०,००० है। उनमें से २,१५,००० लड़कियाँ हैं।

सोफ़िया और फिलिपोपोलिस में दो बड़े बड़े पुस्तकालय हैं। उनमें सब प्रकार की उत्तमोत्तम पुस्तकों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त देश में कोई एक हज़ार के ऊपर वाचनालय हैं। बड़े बड़े नगरों के मुख्य मुख्य स्थानों में व्याख्यान-भवन भी हैं। उनमें अच्छे अच्छे व्याख्यान-दाताओं के व्याख्यान हुआ करते हैं। सर्व साधारण इन्हें बड़ी श्रद्धा से सुनते हैं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भारतवर्ष की तरह बलगारिया भी कृषि-प्रधान देश है। वहां के अधिकांश निवासी खेती ही का काम करते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने खेत का कब्जेदार समझा जाता है। वह अपनी खेती की पैदावार का दसवाँ हिस्सा कर के तौर पर राज्य को देता है। कर न अदा कर सकने की हालत में वह ज़मीन से बे-दखल किया जा सकता है। कृषकों के सुभीते के लिए बलगारिया में कृषि-सम्बन्धी एक बैंक है। देश भर में उसकी शाखायें खुली हुई हैं। उनके द्वारा किसानों को कृषि के लिए आसानी से रुपया मिल जाता है। बलगारिया में गेहूं, धान, मक्का, जौ, बाजरा, ज्वार अधिक पैदा होता है। तम्बाकू, चुकन्दर और गुलाब की भी खेती वहां होती है। इन सब चीज़ों का चालान विदेश को होता है। गुलाब के फूलों

से वहां इत्र बनता है। कोई ४० मन फूलों से आध सेर इत्र तैयार होता है। इत्र बड़ा बढ़िया होता है। वह पेरिस और लन्दन जाता है, जहाँ उससे अनेक प्रकार के इत्र और तेल आदि बनते हैं।

बल्गारिया के मनुष्यों की रहन-सहन बहुत सीधी-सादी है। वे अपने घरों ही के बुने हुए मोटे कपड़े पहनते हैं। वे शौकीन नहीं। फिजूल चीजों के लिए वे अपना धन लुटाना उचित नहीं समझते। अमीर आदमी तक छोटे छोटे घरों में रहते हैं। घरों का फ़र्श मिट्टी ही का होता है। उन्हें चटक मटक बिलकुल पसन्द नहीं। बल्गारिया के निवासी अपनी इस स्थिति से यथेष्ट सन्तुष्ट रहते हैं। यही कारण है जो वे सर्वदा प्रसन्न और हृष्ट-पुष्ट देख पड़ते हैं। मितव्यय करने के कारण वे हर साल कुछ न कुछ रुपया बचा लेते हैं।

बल्गारिया वाले भले-बुरे काम का अच्छा ज्ञान रखते हैं। आप किसी से कोई अनुचित काम करने के लिए कहें तो वह फौरन जवाब देगा कि वैसा करने के लिए उसकी आत्मा गवाही नहीं देती; वैसा करना उसके लिए लज्जाजनक है। वह अपना समय व्यर्थ वाद-विवाद और भले-बुरे की व्याख्या में न बितायेगा।

बल्गारिया में अनेक जातियों और धर्मों के मनुष्यों का निवास है। वे सभी अपने अपने विश्वास के अनुसार धर्माचरण करने के लिए स्वतन्त्र हैं। कभी किसी के धर्माचरण में किसी प्रकार का आघात नहीं होता। बल्गारिया के अधिकांश निवासी आरथोडाक्स चर्च नामक ईसाई सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। इस सम्प्रदाय के प्रधान पादरी सर्वसाधारण प्रजा के द्वारा चुने जाते हैं।

बलगारिया में लड़कों और लड़कियों के विवाह का समय नियत है। विवाह के समय लड़के की उम्र १६ और लड़की की १७ साल से कम न होनी चाहिए। विवाह का सारा कार्य वहां के पुरोहितों और धर्म-याजकों द्वारा सम्पन्न होता है। धर्म-याजक और पुरोहित ही पति-पत्नी के त्याग के मुक़द्दमों का भी विचार करते हैं। बलगारिया के स्त्री-पुरुष कपटप्रेम करना बहुत कम जानते हैं। पत्नी के अधिकारों पर पति आघात नहीं करता ; पत्नी भी पति ही की हर प्रकार सहायता करती है। इसीसे पति-पत्नी में तलाक़ देने की नौबत बहुत कम आती है।

साधारण जीवन व्यतीत करने पर भी बलगारिया के निवासियों की तन्दुरुस्ती अन्य देशों के निवासियों की तन्दुरुस्ती से अच्छी है। उनका शरीर खूब दृढ़ और श्रमसहिष्णु होता है। रोग उन्हें कम सताता है।

बलगारिया की राजधानी सोफ़िया बहुत सुन्दर और मनोरम नगर है। बलगारिया के स्वतन्त्र होने के पहले वह बड़ी बुरी दशा में था। उसकी आबादी उस समय केवल २० हज़ार थी। उसकी गलियाँ तंग और गन्दी थीं। चौड़ी सड़कें बहुत कम थीं। किन्तु अब इस नगर की काया ही पलट गई है। अब तो इसकी आबादी कोई १,२५,००० है। चौड़ी चौड़ी सड़कें और साफ सुथरी गलियाँ इसकी शोभा को बढ़ा रही हैं। इसके अनेक दर्शनीय और विशाल भवनों की निराली छटा दर्शक के मन को मोह लेती है। राजकीय भवन, बड़ा पोस्ट-आफिस, जातीय नाटक-भवन, युद्ध का दफ्तर, नेशनल बैंक, विलियम

ग्लैडस्टन हाई स्कूल, ग्रैंड होटल, जातीय कृषि-बैंक आदि अनेक विशाल इमारतें यहाँ अब शोभायमान हैं। नगर में रेल, तार, टेलिफ़ोन, मोटरकार, ट्रामवे, जल-कल और बिजली की रोशनी आदि का बहुत उत्तम प्रबन्ध है।

बल्गारिया बहुत छोटा राज्य है। उसकी आबादी और उसका क्षेत्रफल बहुत कम है। फिर भी उसकी सेना-संख्या कोई चार पाँच लाख है।

[जनवरी १९१६



